भूमिका ।

प्रिय विज्ञगण !

आज कलके बहुतसे लोग जो कि धर्मात्मा और पंडित बने फिरतेहैं वह विना ही विचारके वेदांतियोंको नास्तिक कह देतेहैं और अपनेको आस्तिक बतलातेहैं परंतु वह आस्तिक और नास्तिक शब्दके अर्थको नहीं जानतेहैं, क्योंकि भेदवादरूपी मल और स्वार्थपरतारूपी पापसे उनके अन्तःकरण मलीन होरहेहैं इसीसे वह चित्तकी शुद्धिके साधनोंमें भी प्रवृत्त नहीं होतेहैं किन्तु उलटे चित्तकी अशुद्धिके साधनोंको ही करतेहैं उसीसे उनके चित्त रागद्वेष रूपी अग्निसे तप्तही बने रहतेहैं आप तो बंधन और दुःखमें पडेही हैं औरोंको भी बंधन और दुःखमें डालते जातेहैं इसी वास्ते भेदवादीकी संगति करनेकी भी शास्त्रोंमें निंदा लिखीहै क्योंकि विना एक आत्मदृष्टिके अर्थात् अभेदज्ञानके कदापि पुरुषका मोक्ष नहीं होता है ऐसा वेदने नियम करदियाहै और चित्तकी शान्ति भी कदापि नहीं होतीहै उसी अभेद प्रतिपादक वेदान्तशास्त्रके मुख्य आचार्य्य **श्रीशंकराचार्य्यजी** महाराज हैं संसारमें ऐसा कौन पुरुष होगा जिसने शंकराचार्य्यजीका नाम न सुना होगा । केवल हिन्दू जातिके सब लोग उनके नामको जानते हैं ऐसा नहीं बल्कि ईसाई और मुहम्मदी वगैरह भी उनके नामसे वाकिफ हैं और इतर विलायतोंमें भी याने इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, जरमनी, रूम, रूस, चीन, जापान, ब्रह्मा, सिलौन वगैरहमें भी उनका नाम मशहूर है । संस्कृतमें तो उनका जीवनचरित्र **शंकर दिग्विजय** नाम करके प्राचीन ग्रन्थ प्रसिद्ध है ही किन्तु अंगरेजी, फारसी, अरबी, उर्दू वगैरह भाषाओंमें जो कि तवारीखें हैं उनमें भी उनका जीवनचरित्र लिखाहै । बाल्यावस्थामें ही संन्यासको धारण करके जिन्होंने परोपकारके लिये और सर्व जीवोंके कल्याणके लिये कमर बांधी थी और बडे २ जैन व दूसरे मतवादियोंको पराजय

करके सब देशोंमें वेदांतका झंडा जिन्होंने गाडदियाथा उन्ही शंकराचार्य्यजीके जीवनचरित्रको हिन्दी भाषामें सर्वजीवोंके उपकारके लिये हमने लिखाहै और "शंकराचार्यजीवनचरित्र" नामक यह पुस्त हमने सर्वाधिकार सहित सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास अध्यक्ष "श्रीवेंकटेश्वर" बम्बई को सादर समर्पित की है और कोई महाशय इसके छापने आदिका साहस न करैं नहीं तो लाभके बदले हानि उठानी पडेगी ॥ शिवम् ॥

स्वामी परमानन्द.
पेशावर।

अथ शंकराचार्यजीवनचरित्र।

स्वामी परमानन्द विरचित।

दोहा।

नमो नमो तिस देवको, जो अनंत निजरूप ॥
जहि जाने दुख टरतहै, नाशतहै भ्रमकूप ॥ १ ॥
आदि अंत जाको नहीं, नहीं जाति अरु रूप ॥
पूर्ण सबनमें रमरह्यो, नित्यहि ज्ञानस्वरूप ॥२॥
ब्रह्मविदनमें जो भयो, शंकर नाम प्रधान ॥
मान करनके योग वह, जानै सकल जहान ॥ ३ ॥
तिनके जीवनचरितको, वरणौं मैं मन लाय ॥
जो जानै मन बुद्धि कर, लहै परम पद पाय ॥ ४ ॥
हंसदास गुरुको प्रथम, प्रणवों बारंबार ॥
नाम लेत जेहि तम मिटै, अघ होवत सब छार ॥ ५ ॥

चौपाई।

परमानँदममनाम पछानो। उदासीन मम पथको जानो॥
रामदासमम गुरुके गुरुहैं। आत्मवित्तजो मुनिवरमुनिहैं॥

दोहा।

परसराम मम नगर है, सिंधु नदी उस पार।
भारत मंडलके विषे, जानै सब संसार॥ ६ ॥

दक्षिणमें केरल देश प्रसिद्ध है, उसमें वृषकेतु नामका एक पर्वत है और पूर्णानाम्नी एक नदी है उस नदीके किनारे पर महादेवजीका एक मंदिर था और उससमयमें जो केरल देशका राजा था उसका नाम राजशेखर था। उस राजाने नदीके किनारे पर चन्द्रमौलि नामका एक मंदिर बनवाया था और नदीके किनारे पर जो नगर बसा था उसमें विद्याऽधिराज नामका एक महात्मा ब्राह्मण रहता था, जो कि सब शास्त्रों और वेदोंका वेत्ता था। वह अपने शुद्ध आचरणसे रहता था, अर्थात् ब्राह्मणके गुण सब उसमें वर्त्तमान थे और वह शिवका उपासक था। उसके घरमें एक लडका उत्पन्न हुआ उसका नाम उन्होंने शिव गुरू रखा, जब वह बालक पांच बरसका हुआ तब विद्याऽधिराजने उपनयन कराकर उसे विद्याध्ययन करनेके लिये गुरुके पास भेज दिया।

शिवगुरु गुरुकुलमें निवास करके ब्रह्मचर्य्यको धारण करके वेदों और षट्शास्त्रोंको पढनेलगे। बारह बरस तक गुरुकुलमें बराबर अध्ययन करते रहे। अंगोंके सहित वेदोंको और इतर शास्त्रोंको भी शिवगुरुने पढ लिया जब कि शिवगुरु पूरे पंडित होगये और वेदशास्त्रोंके तात्पर्यको उन्होंने पूरीतौरपर जान लिया और उनके गुरुने भी देखा कि यह अब पूर्ण पंडित होगये हैं तब एक दिन गुरुने उनसे कहा हे वत्स! तुमने संपूर्ण विद्याओंको पढ लिया है अब तुम घरमें जाकर विवाहको करो और तुम्हारे माता पिता भी तुम्हारा रास्ता देखते होंगे कि, अब हमारा पुत्र विद्या अध्ययनकी समाप्ति करके आता होगा। इसलिये अब तुम घरमें जाकर माता पिताको प्रसन्न करो और विवाहको करो। जब कि इस प्रकारका उपदेश गुरुने शिवगुरुको किया तब शिवगुरुने कहा कि, हे गुरो! वेदमें तो कभी भी ऐसा नियम विधान नहीं है कि, ब्रह्मचर्य्यके अनन्तर अवश्य ही विवाह करके गृहस्थाश्रम करे किंतु ऐसा कहा है कि ब्रह्मचर्य्य आश्रममें ही जिसके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न होजाय वह तुरंत ही संन्यासको धारण करले गृहस्थाश्रमको न करै और जिसको ब्रह्मचर्य्याश्रम में वैराग्य न हो उसके लिये गृही बनना कहा है सो मेरी इच्छा ऐसी है कि, नैष्ठिक ब्रह्मचारी बन कर आपकी सेवामें अपनी आयुको व्यतीत करूं और नित्यही वेदोंको पढता पढाता रहूँ और अग्निहोत्रको नित्यही

करता रहूँ गृही बननेकी मेरी इच्छा नहीं है क्योंकि जैसे विधिपूर्वक यज्ञ करनेसे वर्षा होती है विधिहीन यज्ञ करनेसे वर्षा नहीं होती है और विधिपूर्वक अश्वमेधादिक यज्ञोंके करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है अन्यथा करनेसे नहीं होती है तैसेही भोगकी भी पूरी सामग्री होनेसे गृहस्थाश्रमका सुख होताहे, नहीं तो नरकसे भी अधिक दुःख होता है। फिर जब तक पुरुष स्त्रीके सुखको अनुभव नहीं करता है तब तक उसमें सुखको मानता है जब अनुभव करलेता हे तब फिर तिसमें सुखको नहीं मानता है और धनहीन पुरुषके लिये तो स्त्री कालरूप ही होती है और अनेक प्रकारकी चिंताकी एक खान स्त्री ही है इसलिये मैं विवाह नहीं करूँगा और आपकी सेवामें ही दिनोंको व्यतीत करूँगा। इस प्रकार वाद विवाद शिवगुरुका अपने गुरुके साथ होताही था कि, इतनेमें शिवगुरुके पिता भी वहां पर पहुँच गये शिवगुरुने बडे आदर पूर्वक प्रणाम कर अपने पिताको बिठाया।

शिवगुरुके पिता यथाशक्ति शिवगुरुके विद्यागुरुको ब्रह्मचर्य्यकी समाप्तिकी दक्षिणा देकर और अपने पुत्रको समझाबुझाकर अपने साथ घरमें लिवालाये। घरमें जाकर शिवगुरुने नम्रतापूर्वक माताके चरणोंपर माथको रखा और चरणोंकी धूलीको माथेपर लगाया। माताने शिवगुरुको छातीसे लगाया और कुछ दान भी शिवगुरुसे कराया और कहने लगी आज मैं बडी भाग्यवती हूँ जो मेरे प्रिय पुत्र विद्याको अध्ययन करके घरमें आये हैं। शिवगुरु अब घरमें माता पिताकी सेवा करने लगे और उनकी आज्ञामें चलने लगे।

जब कि शिवगुरुकी विद्वत्ताकी चरचा उस देशमें फैल गई तब जिनके घरमें कन्यायें थीं उन्होंने शिवगुरुके विवाहके लिये उनके पिताके पास संदेशा भेजा। उस देशमें मघ नाम करके एक बडे भारी विद्वान थे, उनके घरमें बडी रूपवती और गुणवती एक कन्या थी, उसने आकर शिवगुरुके पितासे विवाहके बारेमें कहा और साथ ही यह भी कहा कि, मैं बहुतसा धन भी दूँगा और बरातकी भी मैं खातिर बहुत उत्तम करूँगा। शिवगुरुके पिताने कहा कि, हमारे कुलकी यह रसम है कि जो हमारे घरमें लाकर कन्याका विवाह करैंग उसीकी कन्याको हम स्वीकार करैंगे, हम द्रव्यके भूखे नहीं हैं, किंतु हम

सन्मानके भूखे हैं। मध पंडितने इस वार्त्ताको भी स्वीकार कर लिया और शुभ मुहूर्त देखकर अपनी कन्याको उनके घरमें लाकर शुभ लग्नमें शिवगुरुके साथ विवाह करदिया।

अब शिवगुरु गृहस्थ बनकर गृहस्थाश्रमके धर्मोंकी पालना नित्य ही करनेलगे और शिष्योंको छः अंगोंके सहित नित्य प्रति ही वेद पढाने लगे और अग्निहोत्रादिक कर्मोंको भी नित्य करने लगे और विषयजन्य सुखको भी अनुभव करने लगे, इसी तरह करते करते उनकी बहुतसी आयु व्यतीत होगई परंतु उनके घरमें कोई भी संतति न हुई। तब शिवगुरुके मनमें पुत्रके न होनेपर बडा खेद उत्पन्न हुआ। एक दिन उन्होंने अपनी धर्मपत्नीसे कहा कि संसारमें गृहस्थाश्रम विना पुत्रके शोभाको नहीं पाता है, जिसके घरमें पुत्र नहीं है, वह घर शून्य प्रतीत होता है और विना पुत्रके पुरुष पितृऋणसे भी नहीं छूट सक्ता है और हमने पुत्रकी उत्पत्तिके लिये सब उपाय भी कर लिये हैं, अब हमारी बुद्धि कुछ भी काम नहीं करती है। स्त्रीने कहा हे स्वामिन्? एक उपाय मैं आपको बताती हूँ उसको करिये, वह यह है कि, हम तुम दोनों चलकर महादेवजीकी उपासना करैं वह दयालु हैं, वह हमको अवश्य ही पुत्र देवैंगे। शिवगुरुने भी इस वार्ताको स्वीकार करलिया, वह दोनों वृक्षगिरि पर्वतपर जाकर महादेवजीकी उपासना करने लगे। उपासना करते २ जब कि कुछ काल व्यतीत होगया तब महादेवजीने प्रसन्न होकर शिवगुरुको स्वप्न दिया। तिस स्वप्नमें शिवगुरुने देखा कि महादेवजी अपने गणोंके सहित आकरके कहते हैं कि, हे शिवगुरु! तुमने हमारा भारी तप कियाहै तुम्हारे घरमें संपूर्ण गुणों करके संपन्न पुत्र होगा और वह संपूर्ण पृथ्वी पर दिग्विजय करेगा, अब तुम अपने घरको चले जावो। शिवगुरुकी जब नींद खुलगई तब उन्होंने अपनी स्त्रीको वह स्वप्न सुनाया। दोनों बडे प्रसन्न होकर अपने घरको चले आये। थोडे ही दिनोंके पीछे शिवगुरुकी स्त्रीको गर्भ रहगया शिवगुरुकी स्त्रीका नाम सती था। सतीके मुखपर प्रतिदिन कांति बढने लगी और शरीरभी तिसका पुष्ट होने लगा तब सतीको अपने गर्भमें तेजस्वी बालक जान पडा। सती बडे संयमसे रहती और रात्रि दिन शिवका ही स्मरण करती थी।

जब नव मास व्यतीत होगये और दशम मासमें बालकका जन्म हुआ तब तिस कालमें सब दिशाओंमें जय २ ध्वनि होने लगी और सुंदर २ वायु चलने लगी। सब तरफ मंगलके ही शब्द होने लगे। पुत्रके जन्म होनेका शिवगुरुने बडा उत्साह किया और ब्राह्मणोंको तथा याचकोंको बहुत दान दिया। जब कि, बालकका जन्म हुए दश दिन व्यतीत होगये तब शिवगुरुने कुलके सब लोगोंको बुला कर भोजन कराया और वेद विधिसे पुत्रका नामकरण किया शिवगुरुने कहा जिस हेतुसे शिवकी उपासनासे मेरा यह पुत्र उत्पन्न हुआ है इसी हेतुसे इसका नाम मैं शंकर धरता हूँ। ऐसा कहकर शिवगुरुने पुत्रका नाम शंकर रक्खा। सबै लोगोंने साधु २ शब्द कहा फिर शिवगुरुने ज्योतिषियोंको बुलाकर पुत्रके भाग्य का हाल पूछा। ज्योतिषियोंने कहा यह बालक आपका बडा विद्वान् और योगि-राज होगा। ज्योतिषियोंको शिवगुरुने बहुतसा द्रव्य दिया और धीरे धीरे पुत्रका लाडप्यार करके दिनोंको व्यतीत करनेलगा।

जब शंकरजी तीन बरसके हुए तब पिताने बडी धूमधामसे शंकरजीका मुंडन कराया। मुंडन करानेके थोडेही दिन पीछे शिवगुरुका देहान्त होगया। उनका दाहकर्म सब शंकरकी माता सतीने किया। जब कि शंकरजी पांच बरसके हुए तब इनकी माताने इनका यज्ञोपवीत कराकर इनको गुरुके पास अध्ययन करनेके लिये बिठाया। फिर थोडेही कालमें शंकरजीने षटशास्त्रोंका अध्ययन कर लिया और महाभाष्य पर्यंत व्याकरणको पढकर बडे भारी पंडित होगये और बडे २ पंडितोंके साथ शास्त्रार्थ करने लगे और बडे २ कर्मी भेदवादियोंको पराजय करने लगे।

जब कि शंकरजी अद्वितीय पंडित होगये तब इनकी माताने अपने मनमें शंकरजीके विवाह करनेका विचार करके शंकरजीसे इस वार्ताको कहा—हे पुत्र! और तो सब मनोरथ मेरे पूर्ण होगये है परन्तु एक मनोरथ बाकी है वह यह है जो अपने नेत्रोंसे आपके विवाहको भी मै देख लेऊं। शंकरजीने मातासे कहा हे माता! यह संसार तो नाशी है और फिर जितना स्त्री पुत्रादिकोंका सुख है, वह भी नाशवान् है। और क्षणिक है तिसके लिये जो शोक है वह भी वृथा है। यदि कोई पुरुष जीर्ण वस्त्रकी ध्वजा बनावै और प्रबल वायुमें तिसको

बांध दे तब वह ध्वजा कुछ देरमें ही फट जायगी क्योंकि वह ध्वजा अति चंचल है, तैसे यह शरीर भी ध्वजाकी तरह अति चंचल है कल तक रहे वा न रहे इस विश्वासके भी योग्य नहीं है । जब कि एक दिन तक रहनेका जिसका भरोसा नहीं है, तब कौन बुद्धिमान ऐसे शरीरमें स्नेह करेगा और अनेक प्रकारके दुःखोंकी खान जो स्त्री तिसको ग्रहण करेगा । हे माता ! यह जीव अनादि है, अनेक जन्मोंमें अनेक प्रकारके स्त्री पुत्रोंका यह लालन पालन करता चला आया है । अब वह सब स्त्री पुत्र कहां हैं, पथिककी तरह उन सबका संग था, इसी तरह इस वर्तमान जन्मके स्त्री पुत्रोंका संग भी पथिककी तरह है । जैसे रात्रिके समय सब पक्षी इधर उधरसे आकर एक वृक्ष पर जमा होजाते हैं, सवेरा होतेही सब इधर उधर होजाते हैं तैसेही संसारमें सम्बन्धी जन हैं ।

जो पुरुष विवाह करके पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं उनका पुत्रोंमें अति मोह होजाता है तिसी मोहके वशमें होकर वह जन्मते मरते ही रहते हैं उनका जन्म मरणका चक्र कदापि नहीं छूटता है । हे मातः ! बिना संन्यासके यह जन्म मरणरूपी संसार कदापि नहीं छूटता है इसलिये मैं अब संन्यासको धारण करूँगा, विवाहको मैं कदापि नहीं करूँगा, किंतु मैं अब मुक्तिके लिये ही यत्नको करूँगा । हे मातः मेरा अब ऐसा ही संकल्प है सतीके मनमें प्रथम तो केवल शंकरके विवाहकी ही चिंता थी अब शंकरके वचनोंको सुनकर दूसरी एक और भी चिंता खडी होगई और संन्यास लेनेका वचन बाणकी तरह माताके हृदयको भेद करगया और तिसके नेत्रोंसे जल चलने लगा और शोकरूपी समुद्रमें माता डूबगई और कंठ तिसका रुक गया और तिसके मुखसे वार्ता भी निकलनी बंद होगई । थोडी देरके पीछे सतीने बडी धीरतासे जलको रोककर शंकरजीसे कहा हे पुत्र ! संन्यास लेनेके संकल्पको तुम त्याग करदो और विवाहको करो क्योंकि ऐसा वेदमें लिखा है ब्रह्मचर्य्यको समाप्त करके पश्चात् विवाह करे और पुत्रोंको उत्पन्न करके पितृऋणसे छूटकर फिर संन्यासको धारण करै, देव ऋण, पितृऋण, ऋषिऋण, ये तीन ऋण, द्विजाति पर रहते हैं इन तीनों ऋणोंको चुकाकरके संन्यासका ग्रहण करना

लिखाहै। हे पुत्र! विद्या करके ऋषि ऋणसे और यज्ञोंकरके देवऋणसे और संततिको उत्पन्न करनेसे पितृऋणसे, पुरुष छूटता है। सो एक ऋषि ऋणसे ही तुम अभी छूटे हो, देवऋण और पितृऋण अभी तुम्हारे शिरपर बाकी है, इन दोनों ऋणोंसे छूट करके पश्चात् तुम संन्यासको ग्रहण करो।

हे तात! मेरी इस आज्ञाको तुम मानो क्योंकि माताकी आज्ञा वेदसे भी बढकर है और अब एकही तुम घरमें मेरे आधार हो और प्राणोंसे भी अधिक मेरेको प्यारे हो, बिना तुम्हारे और कोई भी मेरा नहीं है, न तो कोई घरमें बूढा है और न कोई घरमें बालक है जो कुछ हमारे हो सो तुमहीं हो, यदि तुम भी संन्यासको धारण करलेवोगे तो फिर मेरी पालना कौन करेगा और मैं बिना तुम्हारे कैसे जीऊँगी और तुम्हारे होतेहीं मैं घरमें भागवती कही जाती हूँ तुम्हारे चलेजानेसे मेरे तुल्य अभागिनी कौन होगा। जब कि, तुम संन्यासी होजावोगे और मैं मरूँगी तो मेरी दाहक्रिया कौन करैगा? तुम तो संपूर्ण धर्मोंको जाननेहारे हो, फिर तुम इतने कठोर चित्तवाले क्यों होगये हो? हमपर तुमको दया क्यों नहीं आती है, मुझ सनाथिनीको अनाथिनी क्यों करते हो? जब कि, अनेक युक्ती और प्रमाणोंसे माताने शंकरजीको समझाया तब शंकरजी मनमें विचार करने लगे, मातासे वादविवाद करना भी उचित नहीं है। और संसारबंधनसे छूटना भी जरूरी है, अब क्या करना चाहिये।

इस तरहसे तो माता कदापि नहीं मानैगी कोई ढंग करना चाहिये। ऐसा विचार करके उस दिन तो शंकरजी चुपचाप रहगये फिर माताके सामने कुछ भी नहीं बोले, दूसरे दिन सबेरे जब कि शंकरजी नदीपर स्नान करनेको गये और किनारे पर वस्त्रोंको धरकर नदीमें स्नान करने लगे, याने ज्योंही वह नदीके जलमें गये त्योंही एक मगरने आकर उनके पांवको पकड लिया। तब शंकरजी चिल्लाने लगे और इतनेमें एकने जाकरके शंकरजीकी मातासे कहा तुरंत ही वह दौडी चली आई और किनारे पर खडी होकर वह रुदन करने लगी और व्याकुल होकर कहने लगी हे शिव! मैने जन्मभर तुम्हारी उपासना इसलिये की है कि, हमारा पुत्र कदापि दुःखी न हो आज मेरे पुत्रको मगरने पकड लिया है और वह व्याकुल होकर रुदन कररहा है, तिसको तुम मगरसे छुडा-

दो। सतीने जब इस प्रकार शिवजीसे प्रार्थना की "तब शंकरजीने मातासे कहा हे माता! यदि तू मेरेको संन्यास धारण करनेकी आज्ञा दे दे तब यह मगर मुझको छोडदेगा" सतीने तुरंत ही शंकरजीको संन्यास धारण करनेकी आज्ञा देदी और शंकरको आशीर्वाद भी दिया कि, तुम्हारी जय हो, और तुम संन्यासी बनकर जीते रहोगे तो मैं तुम्हारा दर्शन तो करती रहूँगी। जिस कालमें सतीने शंकरजीको संन्यास धारण करनेकी आज्ञा दी तिसी कालमें मगरने शंकरजीके पाँवको भी छोड दिया और शंकरजी तुरंत जलसे बाहर आकर कहने लगे माता मैंने मानसी संन्यासको अभी कर लिया है, मैं अब संन्यासी बनगया हूँ, मेरा अब घरमें जाकर रहना ठीक नहीं है, अब तुम मेरेको बाहर जानेके लिये आज्ञा देउ और जो कि हमारे कुटुंबकी स्त्रियें हैं ये भी सब तुम्हारी सेवा करेंगी और तुम्हारी आज्ञामें रहेंगी तुमको किसी तरहका भी दुःख नहीं होगा और हमारे पिताका जो द्रव्य है सो तुम्हारे खाने पीनेके लिये बहुतहै तुम्हारे मरनेपर यह सम्बन्धी सब तुम्हारे क्रिया कर्मको भी करदेवैंगे इस वार्ताका तुम किंचित् भी भय मत करो।

शंकरकी वार्ताको सुनकर माताने कहा एक वार्ता हमारी भी तुम सुनो कि जिस कालमें मेरा मृत्यु होजाय तिस कालमें तुम आकर अपने हाथसे मेरे मृतक शरीर को दाह करना, यदि तुम कहो कि हम संन्यासी होकर तुम्हारे देहका दाह कैसे करेंगे तब मैं कहती हूँ तुम सब बातमें समर्थ हो और समर्थको दोष नहीं होता है और फिरभी तुम्हारे ऐसे पुत्रको उत्पन्न करके भी यदि मेरी कामना पूरी नहीं होगी तब तुम्हारे जन्मका हमको क्या फल हुआ।

शंकरजीने कहा जब आपका अन्तका समय समीप आवैगा, तब मैं आपके पास हाजिर होजाऊँगा और जो आपकी आज्ञा होती है तिसको पूरा करूंगा और अपने मनमें फिर इस वार्ताको नहीं लाना कि, हमको त्यागकर चले गये हैं और मैं अनाथ विधवा अब कैसे जीऊंगी? मेरे घरमें रहनेसे जितना सुख तुमको होता था उससे भी अब तुमको अधिक सुख होगा, तुम किसी बातकी भी चिंता नहीं करना और मेरेको अपने समीप ही समझना। मातासे ऐसा कह करके फिर शंकरजीने अपने कुटुंबके लोगोंसे कहा, हमारी माताकी सेवा अब तुम

लोग करना, इसको मैं आपके सपुर्द करताहूँ उन लोगोंने भी इस वार्ताको स्वीकार करलिया, तब शंकरजी माताके चरणों पर शिरको धरकर और दोनों हाथोंसे माताको प्रणाम करके वहाँसे चल दिये। और रास्तेमें पर्वतोंको और वनोंको तथा नदियोंको उल्लंघन करते हुए एक वनमें नदीके किनारे पर पहुँचकर शंकरजी कषाय वस्त्रोंको और एक दण्डको धारण करके नर्मदा के किनारे पर जाय पहुँचे और वहाँपर श्रीगोविंदाचार्य्यजीके आश्रमको खोजने लगे। संध्याके समयमें उनके आश्रमपर पहुँच गये।

नर्मदा नदीके किनारे पर जहां पर कि, उनका आश्रम था; उस आश्रमके समीप उनके शिष्योंके भी आश्रम बने हुये थे और श्रीगोविंदाचार्य्यजीके आश्रममें एक गुहा बनी थी, तिस गुहामें वह ध्यानावस्थित होकर बैठे थे, उस गुहामें वायुके आनेके लिये एक छिद्र था, उसी छिद्रसे शंकरजीने उनका दर्शन किया और दर्शन करके उनकी स्तुति करने लगे, उन्होंने पूछा आप कौन हैं? तब इन्होंने कहा हम शंकर हैं, आपसे संन्यास लेनेको आये हैं शंकरजीकी सबरी बातोंको सुनकर गोविन्दाचार्य्यजीने अपने चरणको गुहासे बाहर निकाला, उनके चरणकी पूजा शंकरजीने की और उनके आश्रमके समीप शंकरजी रहने लगे, और गोविंदाचार्यकी सेवा पूजा करने लगे, जब उनके समीप रहते शंकरजीको कुछ काल व्यतीत होगया तब एक दिन गोविंदाचार्य्यजीने शंकरजीको आत्मविद्याका उपदेश कर दिया, गोविंदाचार्य्यजीके गुरुका नाम गौडपादाचार्य्य था, उनके गुरुका नाम शुकदेवजी था, शंकरजीने गोविंदाचार्य्यसे संन्यासको ग्रहण किया। और वहाँसे समीपहीमें नदीके किनारे पर एक भूमिपुर नाम करके ग्राम था, उसके समीप कुटी बनाकर एक चतुर्मास भर शंकरजी वहांपर रहे और उस चतुर्मासमें वहाँ पर वर्षा भी बहुत हुई। जब कि चतुर्मास व्यतीत होगया तब गोविंदाचार्य्यजीने शंकरजीको बुलाकर कहा अब तुम काशीजीको जावो और वहाँ पर लोगोंको वेदान्त मतका उपदेश करके उनका उद्धार करो और व्यास सूत्रोंपर भाष्यकी रचना करो और जितने वेद विरुद्ध मत हैं उनका ध्वंस करके अद्वैत मतका प्रचार करो। ऐसा उपदेश करके शंकरजीको गुरुने काशीमें

जानेकी आज्ञा दी । अब शंकरजीने वहाँसे चल दिया। और थोडे ही कालमें शंकरजी काशी पहुँच गये और वहाँ पर निवास करने लगे।

एक दिन शंकरजी सबेरे स्नान करके जब अपने आसन पर बैठे तब एक ब्राह्मणका लडका बडा रूपवान् और विद्वान् आकर शंकरजीको दण्डवत् प्रणाम करके उनके सन्मुख बैठगया। और कहने लगा हे भगवन्! संसारको दुःखरूप जानकर मैंने अपना विवाह नहीं किया है और अपने घरका त्याग करके मैं आपकी शरणको प्राप्त हुआ हूँ, इस अगाध संसारसमुद्रसे मेरी आप रक्षा करें, मुझ अनाथको अपनी शरणमें लेकर मेरेको आत्मविद्याका उपदेश कीजिये। तब शंकरजीने उससे पूछा तुम कौन हो? और आपका देश कौन है? उसने कहा कि चोल हमारा देश है, जहाँ पर कावेरी नदी वहती है, मैं बहुत कालसे महापुरुषके दर्शन करनेके लिये इधर उधर भटक रहा हूँ, जन्मांतरके किसी पुण्य कर्मके प्रभावसे मेरेको आपका दर्शन होगया है। सो आप कृपा करके अब मेरेको कृतार्थ कीजिये अर्थात् इस जन्म मरणरूपी संसारसे मेरेको छुडा दीजिये क्योंकि यह कामदेव अपने बाणों करके सबका विजय कर रहा है और क्रोधादिकोंने संसारमें परस्पर राग द्वेष कररखा है और सब जीवोंकी अपगति कररहे हैं आप इनसे हमारी रक्षा करें। जब कि उसने शंकरजीसे ऐसी प्रार्थना की तब शंकरजीने उसको आत्मविद्याका उपदेश करके संन्यासको धारण करादिया और तिसका नाम सनंदन रक्खा और वह संन्यासको लेकर शंकरजीके पास रहने लगा।

चतुर्मासके व्यतीत होनेपर जब शरदऋतु आई तब आकाश निर्मल होगया और तारे सब चमकने लगे और पश्चिम वायु चलने लगी और दिशा भी सब निर्मल होगईं। एक दिन सबेरे शिष्योंके सहित शंकरजी जब गंगामें स्नान करनेको गये तब रास्तेमें एक चाण्डाल चार श्वानोंको साथ लिये हुए सामने आता दिखाई पडा, इतनेमें वह चांडाल शंकरजीके सामने आकर खडा होगया। तिस चाण्डालको देखकर शंकरजीने सामनेसे हट जावो दूर होजावो ऐसे बार २ कहा। शंकरजीके ऐसे वचनोंको सुनकर चांडालने कहा कि, आत्माको असंग, चिद्रूप, सद्रूप, आनंदरूप, पवित्र श्रुति कहती है। फिर

तिसी आत्माको भेदसे रहित, और सर्व व्यापक भी श्रुति कहती है। जब वह एक ही आत्मा हम, तुम, सब में है, तब आप हटाते किसको हैं व्यापकमें हटना और दूर होना नहीं बनता है। फिर आप अद्वैतवादी संन्यासी कहाते हैं दहिने. हाथमें दण्डको और बायें हाथमें कमंडलुको तुम लिये हो, फिर कषाय वस्त्रको धारण किये हो, और मुखसे अद्वैतको कथन करते हो, अद्वैतवादी बने हो, परन्तु भीतरमें द्वैतवाद ही आपके बना है अद्वैत वाद की तो आपमें गंधमात्र भी नहीं है, मानके लिये दाम्भिक वेष आपने बनाया है, यदि तुम कहो आत्माका भेद नहीं है किंतु हमारे तुम्हारे शरीरका भेद है, हमारा ब्राह्मणका शरीर है, तुम्हारा चाण्डालका शरीर है। सो शरीरोंका भेद नहीं बनसक्ता है, क्योंकि जो पंचभौतिकशरीर आपका है, वह पाँचभौतिक शरीर हमारा भी है। जैसे तुम्हारा शरीर अन्नादिक पंचकोशोंवाला है, तैसे हमारा भी शरीर अन्नादिक पंचकोशोंवाला है। षट्विकार और षट् उर्मियाँ हमारे तुम्हारे शरीरमें बराबर हैं, और मल, मूत्र, मज्जा, अस्थि, रुधिर, चर्म और नाडियाँ जो हैं, ये भी सब हमारे तुम्हारे शरीरमें बराबर ही हैं। जडता और अनित्यता भी हमारे तुम्हारे शरीरमें बराबर ही है, इन्हीं हेतुओंसे हमारे तुम्हारे शरीरका भी भेद नहीं बनसक्ता है। जब कि, हमारे तुम्हारे शरीरका भी भेद नहीं है, और आत्माका भी भेद नहीं है तब फिर आप कैसे कहते हैं, दूर होजाओ हटजावो जैसे अनेक घटोंमें एक ही सूर्य्यका प्रतिबिंब पडता है उस प्रतिबिंबका और मृत्तिकाके घटोंका भेद नहीं है। तैसे ही हमारे तुम्हारे शरीर और आत्मामें भेद नहीं है। तब दूर हो ऐसा कथन भी आपका नहीं बनता है, फिर जो आपके शरीरके भीतर अहंकाररूपी चाण्डाल घुसा है: उसको तो आप निकालते नहीं, जो कि, रात्रि दिन तुमसे स्पर्श कर रहा है और बाहरके चाण्डालको हटाना चाहते हो इससे बढकर और क्या अज्ञान होगा ? हम ब्राह्मण हैं, हम उत्तम हैं, हम संन्यासी हैं, हम ज्ञानी हैं तुम चाण्डाल हो, नीच हो, रागी हो, मूर्ख हो, जबतक यह अभिमान तुमको बना है, तबतक तुम संन्यासी और ज्ञानी कैसे होसक्ते हो ? प्रथम तो इस अहंकाररूपी चांडा-लको अपने भीतरसे निकाल लेवो तब फिर हमसे दूर हो, ऐसा कहो और

अपने स्वरूपसे भूल कर तुम इस हस्तीके शूंडकी तरह चपल शरीरमें ममताको बाँधकर अज्ञानमें फँसे हुए हो, जब तक आपका भेदरूपी अज्ञान दूर नहीं हुआ है, तबतक तो ज्ञान होनेकी संभावना होनी भी कठिन है, जब कि ऐसी ऐसी तर्कें तिस चांडालने शंकरजीपर करीं तब शंकरजी अपने मनमें विचार करने लगे, यह चाण्डाल नहीं है, चाण्डालको इतना बोध कदापि नहीं होसक्ता है ? यह तो कोई देवता है, तब शंकरजीने कहा जो आप कहते हैं, वह सब सत्य है , क्योंकि जिस पुरुषने संपूर्ण जगत्को आत्मरूप करके जान लिया है, वह द्विज हो वा चाण्डाल हो उसको हम गुरु करके मानते हैं, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ आनंदरूपहूँ नित्य मुक्त हूँ, जिसकी ऐसी बुद्धि है, वह पावन हो या अपावन हो वह हमारा गुरु है, जिस पुरुषके राग, द्वेष, दूर होगये हैं और सबमें आत्मदृष्टि होगई है, वह हमारा गुरु है। फिर शंकरने कहा तुम चाण्डाल नहीं हो, अपने स्वरूपको हमको बतावो हमको मालूम होताहै, तुम देवता हो, हमारी परीक्षाके लिये तुम यहाँपर आये हो, सो हमको अपने असली स्वरूपका दर्शन दीजिये। इतना कहते ही शंकरजी क्या देखते हैं, जिस स्थानमें चाण्डाल खडा था, उसी स्थानमें महादेवजी खडे हैं, और मूर्त्तिमान उसके साथ चारों वेद भी खडे हैं, तब शंकरजी महादेवजीकी स्तुति करने लगे। हे स्वामिन् देहदृष्टिकरके तो मैं आपका दास हूँ और जीव दृष्टिकरके मै तुम्हारा अंश हूँ और आत्मदृष्टिकरके मैं आपका स्वरूप हूँ, इस तरहकी और भी शंकरने अनेक प्रकारकी स्तुति महादेवजीकी करीं। तब महादेवजीने कहा तुम बल और बुद्धि करके व्यास भगवान्के तुल्यहो, व्यास भगवान्ने वेदोंका विभाग किया है और वेदांतके सूत्रोंको रचा है, सो तुम उन सूत्रोंपर भाष्यकी रचना करो और जितने वेदविरुद्ध मत हैं, उनका तुम खंडन करो और तुम्हारा ही भाष्य संसारमें बहुत प्रसिद्ध होगा। महादेवजी शंकरको ऐसे वरको देकर अन्तर्द्धान होगये और शंकरजी भी फिर थोडे काल काशीमें रहकर तत्पश्चात् शिष्योंके सहित उत्तराखंडको चले गये, वहां हिमालयपर्वतपर जाकर शंकरजी रहने लगे। उसी बदरिकाश्रमतीर्थमें रहकर शंकरजीने व्याससूत्रोंपर भाष्यकी रचना की और भी उपनिषद् तथा गीतापर भाष्य बनाये और सहस्रनाम पर भी भाष्य बनाया।

सनंदन शंकरजीके चरणोंकी सेवा बहुत करता था, इसलिये तिसका नाम पद्मपादाचार्य्य शंकरजीने रखा। क्योंकि तिसकी सेवाके वशमें होकर शंकरजीका उसमें बडा स्नेह था, एक दिन गंगाके किनारे पर शंकरजी अपने शिष्योंको पढारहे थे कि, इतनेमें एक वृद्ध ब्राह्मण आकर शंकरजीसे कहने लगा कि, आप क्या पढाते है ? हम भी उस को सुनना चाहते हैं, पद्मपादादिक जो कि पढरहे थे उन्होंने उस ब्राह्मणसे कहा यह हमारे गुरुहैं, शंकराचार्य्यजी इनका नाम है, बडेभारी विद्वान् हैं, मानो दूसरे व्यास भगवान्‌जी हैं, इन्होंने व्याससूत्रोंपर भाष्य बनाया है, उसी भाष्यको हम लोगोंको पढारहे हैं, हम सब इनके शिष्य हैं, ब्राह्मणने शिष्योंकी वार्ता सुनकर शंकरजीसे कहा आपके शिष्य आपको भाष्यकार कहते हैं, आप यदि व्याससूत्रोंके तात्पर्यको जानते हैं, तब हम आपसे तीसरे अध्यायके प्रथमसूत्रके अर्थको पूछते हैं, तिसके अर्थको हमसे कहिये, शंकरजीने कहा पूछिये ! तब ब्राह्मणने कहा-" तदंतरप्रतिपत्तौ रंहति संपरिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम्" १ इस सूत्रका क्या अर्थ है ? शंकरजीने कहा-पूर्वदेहको जब यह जीव त्यागता है तब सूक्ष्म भूतोंके कार्य्य जो मन, बुद्धि और इन्द्रिय हैं, इन सबको साथ लेकरके ही देहान्तरको अर्थात् दूसरे स्थूल शरीरमें चलाजाता है। इस वार्ताको छान्दोग्योपनिषदमें प्रश्नोत्तर करके सिद्ध किया है। ब्राह्मणने कहा शरीरके वियोगकालमें इन्द्रिय तो सब अपने कारणमें लय होजाती हैं, तब फिर वह कैसे जीवके साथ देहान्तरमें जाते हैं ? शंकरने कहा इन्द्रिय सब स्वरूपसे अपने कारणमें लय नहीं होते हैं, किन्तु सूक्ष्मरूप करके सब बने रहते हैं, यदि स्वरूपसे लय होजायँ तब तो जीव मुक्त ही होजाय ऐसा तो नहीं होता है। इन्द्रिय सब प्राणोंमें सूक्ष्मरूपसे स्थित होजाते हैं और इन्द्रियोंका स्वामी जो प्राण है वह उन सबको साथ लिये हुए देहान्तरमें चलाजाता है, इसी प्रकार आठ दिनतक शंकरजीका तिस ब्राह्मणके साथ शास्त्रार्थ होता रहा न तो वह ब्राह्मण हारे और न शंकरजी हारें तब पद्मपादने शंकरजीसे कहा यह ब्राह्मण मनुष्य नहीं जान पडता है, मनुष्यकी क्या सामर्थ्य है, जो आपके साथ इतने दिनोंतक शास्त्रार्थ करे, यह कोई देवता है या आपही व्यास भगवान् ब्राह्मणका रूप धारणकर आये हैं।

तव शंकरजीने उनकी स्तुति की और कहा अपने असली रूपका दर्शन हमको दीजिये ।

शंकरजीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर व्यास भगवान्‌ने तुरन्त ही अपने रूपको धारण करलिया शंकरजी व्यासके रूपको देखकर शिष्योंके सहित उनके सम्मुख खडे होगये और श्रद्धा भक्तिपूर्वक उनका वडा आदर किया और सिंहासनपर उनको विठाकर कहा हे भगवन् ! आपने अपना दर्शन देकर हम-लोगोंको कृतार्थ करदिया है । व्यास भगवान्‌ने कहा हम आपकी परीक्षाके लिये आये हैं, सो आप पूर्ण विद्वान् और समर्थ हैं आपने जगतके लोगोंपर उपका-रके लिये भाष्यको वनाया है, जवतक भूमिपर आपका ग्रन्थ रहैगा तवतक आपकी कीर्ति वनी रहेगी । आप वेदविरुद्ध मतोंको परास्त करके दिग्विजय करेंगे, आपकी सर्वत्र जय होगी, इस प्रकार वर देकर व्यासजी अन्त-र्द्धान होगये ।

अव यहाँपर कुछ भट्टपादकी कथाको लिखते हैं ॥ उसी दक्षिणदेशमें एक भट्टपाद नाम करके वडे भारी विद्वान् हुए हैं । उन्होंने एक जैनमतके पंडितके पास कुछ काल विद्या पढी और जैनमतके ग्रन्थोंका भी उन्होंने अच्छी तरहसे अवलोकन किया, उस समयमें इस देशमें वौद्धमतका और जैनमतका जहाँतहाँ वडा जोरशोर था, भट्टपादने विचार करके देखा तव जैनमत और वौद्ध भगवा-नके शिष्योंके मत जो उनको वेदविरुद्ध जानपडे और दम्भ करके युक्त मालूम हुए उनपर जय करनेकी भट्टजीकी इच्छा हुई, और भट्टजी आप जैमिनिमता-नुयायी थे, इसलिये उनका मत निरीश्वरवाद था भट्टजी एक अद्वितीय पंडित थे, उनके साथ तिस कालमें शास्त्रार्थ करनेमें किसी दूसरे पंडितकी सामर्थ्य नहीं थी, भट्टजी जैनमतके विध्वंस करनेकी इच्छा करके तिस कालमें सुधन्वा राजाके पास गये, क्योंकि तिस कालमें सुधन्वा राजा भी जैनियोंका चेला था, राजासे भट्टपादने मुलाकात की, राजाने उनका वडा मान सत्कार किया, राजासे जैनी पंडितोंके साथ शास्त्रार्थ करनेके लिये भट्टपादने कहा राजाने इस वार्ताको स्वीकार किया और सभा की तैयारी की उस सभामें वडे २ भारी जैनमतके पंडित बुलाये गये और वौद्धमतके भी पंडित बुलाये गये, वहुत

दिनोंतक भट्टपादका उनके साथ शास्त्रार्थ होता रहा अन्तको जैनमत और बौद्धमतके पंडित सब पराजित होगये, राजाने कहा हार जीत तो विद्याके बलसे होजाती है, इसमें तो कोई सिद्धिकी वार्ता नहीं है, परन्तु जो पर्वतसे गिरे और तिसके शरीरमें कोई भी चोट न आवै उसीके मतको हम सच्चा जानैंगे और उसीके मतको हम भी स्वीकार करलेवैंगे। और उसीको हम अपना गुरु बनावैंगे, राजाकी इस प्रतिज्ञाको सुनकर जैन और बौद्धमतके पण्डित परस्पर एक दूसरेके मुखकी तरफ देखने लगे, परन्तु राजाके वाक्यका उत्तर किसीने भी न दिया, क्योंकि पर्वतपर कूदनेकी हिम्मत किसीकी भी न पड़ी तब भट्टपादजीने वेदोंको ध्यान करके राजासे कहा हम पर्वतपरसे कूदेंगे, राजाने कहा यदि आपके किसी अंगमेंभी किसी तरहकी चोट नहीं आवैगी, तब मैं आपको गुरु बनाऊँगा और आपके मतको मैं स्वीकार करूँगा, इतना सुनतेही भट्टपादजी पर्वतके शिखर पर चढ गये और वहाँसे गेंदकी तरह नीचेको कूदपड़े पर्वतपरसे नीचे पृथिवी पर आकर खड़े होगये, फूलकी तरह आकर गिरे और उनके शरीरमें किसी तरहकी चोट भी नहीं आई और आकर सभामें बैठगये। राजा तुरंत ही भट्टपादके शिष्य बनगये और उनके मतको राजाने स्वीकार करलिया और भट्टपादसे कहा इतने दिनों तक मेरेको दुष्टोंका संग रहा आज मेरेको महात्माका संग हुआहै और सच्चा मत भी मेरेको मिला है। इतनेमें जैनी बोल उठे—पर्वत परसे कूदना कोई सिद्धि नहीं है क्योंकि किसी मणी या मंत्रके बलसे भी मनुष्य पर्वत परसे कूदजाता है और उसको कोई भी चोट नहीं लगती है, फिर पर्वतपर कूदनेसे कोई मतका निर्णय नहीं होता है। जैनियोंकी इस वार्ताको सुनकर राजाको बडा कोप आया। तब राजाने अपने मन्दिरमें जाकर एक सर्पको घटमें डालकर ऊपरसे घटका मुँह बन्द करके नौकरसे तिस घटको उठवाकर सभामें कर दिया और राजाने कहा वादी प्रतिवादी दोनोंसे मैं पूछता हूँ इस घटमें क्या है? जो ठीक २ बतादेगा उसीके मतको मैं ठीक जानूँगा, जो ठीक २ नहीं बतावेगा, उसको भारी दण्ड देऊँगा। राजाके प्रश्नको सुनकर दोनोंने कहा कल हम इसके उत्तरको कहेंगे, उस दिन तो सब कोई अपने २ स्थानपर चले गये,

दूसरे दिन जब कि, सभा लगी और सब कोई आकर सभामें हाज़िर हुए। तब राजाने तिस घटको मंगाकर सभामें धरदिया और वादी प्रतिवादी दोनों-से राजाने कहा इस घटमें क्या है ? तब जनी पण्डितोंने कहा इसमें सर्प है और भट्टपादने कहा इस घटमें विष्णुकी मूर्त्ति है । भट्टपादके वचनको सुनकर राजाका चेहरा कुँमला गया, क्योंकि राजाने तिस घटमें सर्पको डाला था, राजा विचारने लगे भट्टपादने ठीक नहीं बताया है । अब क्या करें इतनेमें आकाशवाणी हुई, राजन् ! भट्टपादका कथन ठीक है, घटको खोल दीजिये, राजाने घटको खोल दिया तब तिस घटमें विष्णुकी मूर्त्ति दिखाई पड़ी तिसको देखकर राजा चकित होगया उसी कालमें राजाने भट्टपादको अपना गुरु बनाया और जितने उस सभामें जैनी थे उन सबको कैद कर दिया । फिर दूसरे दिन राजाने सबको कतल करवा दिया और अपने नौकरोंसे कहा जो कोई जैन और बौद्ध मतका तुमको मिले बिना ही मेरे पूछे तिसको तुम कतल करडालो । हजारों जैनी और बौद्ध मतवाले कतल कियेगये और हजारों तिसके देश छोडकर भागगये, जो बचे उन्होंने जैन और बौद्धमतको छोड दिया, अब भट्टपादकी पूरी विजय होगई ।

अब उस देशमें भट्टपादका मत ही चलगया जब कि भट्टपाद वृद्ध होगये तब भट्टपादने एक दिन अपने मनमें विचार किया हमने ईश्वरका जो खण्डन करके निरीश्वरवादको स्थापित किया है इसलिये हम दोषके भागी हुए हैं इस दोषकी निवृत्तिके लिये उन्होंने प्रयागराजमें चिता बनवाकर अपने जलनेकी तैयारी की । और इधर उत्तराखंडसे शंकरजीभी वहाँपर अर्थात् प्रयागराजमें पहुंच गये । शंकरजीको भट्टपादने देखकर अपने शिष्योंसे कहा इनका बहुतसा सन्मान करो और इनको भिक्षा करावो भट्टपादजीके शिष्योंने शंकरजीका बड़ा आदर और सन्मान किया और अनेक प्रकारके भोजनोंको बनाकर शंकरजीको उन्होंने भिक्षा कराई, जब कि, शंकरजी अपने शिष्योंके सहित भिक्षा करचुके तब शंकरजीने अपना भाष्य भट्टपादजीको दिखाया । भाष्यको देखकर भट्ट-पादजी बड़े प्रसन्न हुए और भट्टपादजीने शंकरजीकी बड़ाई की और कहा तुम्हारी विद्या समुद्ररूप है, तुमने संसारी जीवोंपर बडा उपकार किया है, तुम दिग्वि-

जय करो तुम्हारी कीर्त्ति संसारमें बहुतकालतक बनी रहेगी, क्या करें हमने जलनेकी दीक्षा लेली है और चितापर आरूढ होगये हैं. नहीं तो आपके भाष्यपर हम टीका बनाते अब तुम जाकर दक्षिणमें प्रथम स्त्रीके सहित मण्डन मिश्रका जय करो, क्योंकि वह बडा भारी पंडित है और तिसकी स्त्री भी बडी पंडिता है र पश्चात् और देशोंमें दिग्विजयका करना और हमतो अब भस्म होतेहैं, निरीश्वर-वादरूपी दोषके हटानेके लिये दो एक घडीमें हम भस्म होजायँगे; इतना कहक' भट्टपादने अपने शिष्योंको आग लगानेकी आज्ञा देदी। शिष्योंने अग्नि लगादी, शंकरजीके देखते २ वह तो भस्म होगये और शंकर-जी प्रयागराजसे चलदिये मण्डनमिश्र माहिष्मती पुरीमें रहते थे, तिस पुरीके समीपमें रेवा नाम करके एक नदी बहती थी, तिसी नदीके किनारे पर शंकरजीने अपने शिष्योंके सहित आसन जमादिया वहाँ नदीके किनारेपर बहुतसी स्त्रियें स्नान करती थीं और उनमें एक मण्डनमिश्रकी दासी भी स्नान कर रही थी, उन स्त्रियोंसे शंकरजीने पूछा मण्डनमिश्रका घर कौन है। तब उनकी दासीने उत्तर दिया।

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीरांगना यत्र गिरां गिरन्ति। द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तत्पंडितमण्डनौकः॥ १॥

वेद स्वतः प्रमाण है या परतः प्रमाण है इस प्रकार तोते याने शुकपक्षी जिसके द्वारके ऊपर अपने घोसलोंमें बैठकर गायन कर रहे हैं तिसीको तुम मण्डनका घर जानना॥ १॥

फलप्रदं कर्म फलप्रदोऽजो कीरांगना यत्र गिरां गिरंति। द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तत् पंडितमण्डनौकः॥ २॥

कर्म आप ही फलको देता है या ईश्वर कर्मके फलको देता है जिसके द्वारके ऊपर घोसलोंमें पक्षी सब ऐसे गायन करते हैं तिसी गृहको तुम मंडनमिश्रका घर जानो॥ २॥

जगद्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात्कीरांगना यत्र गिरां गिरंति। द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तत्पंडितमण्डनौकः ॥ ३ ॥

जगत् नित्य है या अनित्य है इस प्रकारके विकल्पोंको जिसके द्वारपर पक्षी अपने घोसलोंमें बैठकर गायन करते हैं, उसीको तुम मण्डनमिश्रका घर जानो ॥ ३ ॥

शंकरजीने मनमें कहा जिसकी दासी ऐसी पंडिता है न मालूम वह कैसे पंडित होंगे, अब शंकरजी मण्डनमिश्रके घरकी तरफ चले। आगे मण्डनमिश्र घरके सब किवाडोंको बन्द करके भीतर श्राद्धको कररहे थे, शंकरजीने देखा भीतर जानेके तो सब रास्ता बन्द हैं, तब योगबलसे उडकर आकाशमार्गसे भीतर मण्डनमिश्रके समीप पहुँच गये और जहाँपर मण्डन श्राद्ध करते थे वहाँपर मण्डनके सम्मुख जाकर बैठ गये, शंकरजीको देखकर मण्डनमिश्रने बडा क्रोध किया और निरादरके वचनसे शंकरजीसे बोले हे मुण्डी! तुम कहाँसे आये हो और यहाँ पर क्यों आये हो? शंकरने कहा गलपर्यन्त हम मुण्डी हैं और आना जाना हमारे में नहीं है।

प्रश्न–क्या तुम मदिरा पिये हो।

उत्तर–मदिरा पीत नहीं होती है किन्तु रक्त होती है।

प्रश्न–वे कुबुद्धि! गधेके बोझवाली कंथाको तुम उठाये फिरते हो जरासी चुटिया तुमसे नहीं उठाई जाती है और जरासा सूत्र तुमसे धारण नहीं किया जाता है?

उ० रे मूर्ख! मनुष्य होकर स्त्री पुत्रादिकोंके भारको गधेकी तरह उठाकर अनेक प्रकारके दुःखोंको तू सहता है और जरासा वैराग्यका चिह्न जो दण्ड-कमण्डलु तिसको तू नहीं उठासक्ता है।

प्र०–घरके सम्बंधियोंकी पालनाको तुमने एक भार समझ कर फेंक दिया है और बहुतसे चेलों और पुस्तकोंके भारोंको उठा कर घर २ मारे फिरते हो, तुमको लज्जा नहीं आती है?

उ०—उपकारके लिये हम चेलोंको और पुस्तकोंको साथ लिये हैं, क्योंकि उपकारसे बढकर कोई धर्म नहीं है, इनका भार भी हम पर कुछ नहीं है, क्योंकि ये सब हमारी सेवा करते हैं. हमारे दास बने हैं, तुम कामके वशमें होकर स्त्री आदिक भोगोंके अधर्मको धर्म बनाते हो, तुमको लज्जा नहीं आती है।

प्र०—जिन्होंने तुमको उत्पन्न करके लालन पालन किया था, उन्हींकी तुम अब निंदा करते हो. तुमको लज्जा नहीं आती है ?

उ०—जिस योनिसे तुम उत्पन्न हुये हो, उसी योनिमें अब तुम रमण करतेहो तुमको लज्जा नहीं आती है।

प्र०—द्वारके रास्तेको छोडकर चोरकी तरह यहाँ पर दूसरे रास्तेसे आये हो, तुमको शरम नहीं आती है।

उ०—अतिथिको देनेके भयसे चोरकी तरह छिपकर श्राद्धको करते हो, तुमको शरम नहीं आती है।

प्र०—श्राद्धमें यतिको खिलानेसे पितर नहीं खाते हैं, बल्कि यतीके आनेसे ही पितर भाग जाते हैं, इस वास्ते मैं भीतर बैठकर किवांड वन्द करके श्राद्ध करता हूँ, कुछ कृपणतासे नहीं करता हूं, इस वास्ते मैं चोर नहीं हूं, तुमही चोर हो ?

उ०—जो यतिको श्राद्धमें नहीं खिलाता है उसके पितर नहीं खाते हैं।

ब्रह्माण्डपुराणे।

यो वै यतीननादृत्य भोजयेदितरान्द्विजान् ॥
विजानन् वसतो ग्रामे कव्यं तद्याति राक्षसान् ॥ १ ॥

जो शास्त्रको जानकर श्राद्धमें यतियोंका अनादर करके इतर द्विजोंको भोजन कराता है, वह भोजन राक्षस खाते हैं तिसके पितर नहीं खाते हैं, फिर उसी ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है, प्रथम श्राद्धका अन्न यतीको खिलाना चाहिये, यती न मिलै तब ब्रह्मचारीको, ब्रह्मचारी न मिलै तब द्विजको, खिलाना चाहिये। इस क्रमको जो उल्लंघन करता है, वह दोषका भागी होता है, सो तुम दोषके भागी हो और छिपाकर करनेसे चोरभी हो।

प्र०—तुम कहाँ रहते हो ।

उ०—पृथ्वीपर रहते हैं ?

प्र०—कौन होतेहैं,

उ०—तुम्हारे नेत्रोंमें रोग है उसकी औषधी करो ।

प्र०—आपका मत क्या है ?

उ०—शुद्ध ब्रह्मका जो-मत है, वह हमारा मत है ।

प्र०—शुद्ध तो मतोंसे रहित निर्धर्मिक है ?

उ०—हम भी कल्पित मतोंसे रहित निर्धर्मिक हैं ।

प्र०—क्या तुम ब्रह्म हो ?

उ०—इसमें कौन सन्देह है, अज्ञानी मूर्खोंको इसमें सन्देह होता है, जब कि, इस प्रकार दो घटिका पर्यन्त मण्डन मिश्रके साथ शंकरजीका वितण्डावाद होता रहा तब मण्डनमिश्रके शिष्योंने मण्डनको समझाया कि, आप गृहस्थ हैं, ये भिक्षुक हैं, आपका यह धर्म है कि, इनको सत्कार पूर्वक भिक्षा कराइये शिष्योंके समझानेपर मण्डनमिश्रने शंकरजीका अतिथि सत्कार किया और भिक्षाका निमंत्रण भी दिया ।

तब शंकरजीने कहा हम भिक्षाका निमंत्रण नहीं मानते है, हम तो शास्त्रार्थरूपी भिक्षाके लिये आपके पास आये हैं, यदि आपको भिक्षा देनी हो तब शास्त्रार्थरूपी भिक्षा हमें दीजिये, जिसमें कि, श्रुतिपथका निर्णय हो । मण्डनमिश्रने कहा हमने इस वार्ताको अंगीकार किया और हम आपको शास्त्रार्थ करनेका निमंत्रण देते हैं, परन्तु प्रथम अन्नरूपी भिक्षाको कराकर पश्चात् द्वितीय भिक्षाको करावैंगे और यह तो हमारा बडा भाग्य है, जो आप हमसे शास्त्रार्थ करनेको आये है, मानो घरमें बैठे हमको विजय देनेको आप आये हैं, और हमारी विद्याका परिश्रम भी सफल होजायगा, शंकरजीने कहा हमारे तुम्हारे वादमें कोई मध्यस्थ होना चाहिये, मण्डनमिश्रकी स्त्रीने कहा मैं तुम्हारे दोनोंके वादमें मध्यस्था बनूँगी, शंकरजीने इस वार्ताको भी वीकार करलिया । फिर मण्डनमिश्रने कहा हमको आप थोडासा अवकाश ीजिये जो हम अपने कर्मकी समाप्ति करलेवैं, शंकरजीने कहा अच्छा पहिले

आप अपने कर्मको समाप्त करलें पश्चात् और काम होगा, मण्डनमिश्रने अपने कर्मको समाप्त किया तत्पश्चात् दोनोंने भोजन किया, भोजन करके दोनों जिसकालमें शास्त्रार्थ करनेको वैठे और बीचमें मंडन मिश्रकी स्त्री मध्यस्था बनकर वैठी तब् शंकरजीने मण्डन मिश्रसे कहा हमारी प्रतिज्ञाको तुम सुनो।

एक ब्रह्महो परमार्थरूपसे सत्य है, तिससे भिन्न सम्पूर्ण जगत् मिथ्याहै, आत्माके अज्ञान करके जगत् सद्रूप प्रतीत होताहै, आत्माके ज्ञानकरके जगत् असत्यरूप होजाता है,जैसे शुक्तिके अज्ञान करके रजत प्रतीत होता है शुक्ति ज्ञान करके मिथ्या होजाताहै जैसे रज्जुके अज्ञान करके सर्प दिखाताहै रज्जुके ज्ञान करके सर्पका अभाव होजाता है, तैसे ब्रह्मके अज्ञान करके जगत् दिखाता है, ब्रह्मके ज्ञान करके जगत्का अभाव होजाताहै और अपने स्वरूपमें स्थिति होनेका नाम ही मुक्ति है, इसीमें अनेक श्रुतिवाक्य भी प्रमाण है, ऐसी हमारी प्रतिज्ञा है, यदि हम इस प्रतिज्ञासे हारजायँगे तब हम काषायवस्त्रोंको उतार कर श्वेत वस्त्रोंको पहरलेवैंगे, अर्थात् संन्यासाश्रमका त्याग करके गृहस्थ बनजावैंगे।

शंकरजीकी प्रतिज्ञाको सुनकर मण्डनमिश्रने कहा हमभी प्रतिज्ञा करते हैं, स्वर्गकी प्राप्तिका नामही मुक्ति है, सो मुक्ति कर्मोंके करनेसे होती है और मन्त्र रूपही देवता है और कर्महो ईश्वर है, ऐसी हमारी प्रतिज्ञा है, यदि हम इस अपनी प्रतिज्ञासे हार जायंगे तब आपके शिष्य बनकर संन्यासको धारण करलेवैंगे।

इस प्रकार दोनोंकी परस्पर प्रतिज्ञा होगई और सभा स्थापित होगई मण्डन मिश्रकी स्त्रीका नाम भारती था और उसीको दोनोंने मध्यस्था माना था, भारतीने दो पुष्पोंकी माला लेकर दोनोंके गलेमें डाल दिया और कहा जिसकी माला कुम्हला जायगी उसीको जानलेना कि यह हारगया है, अब आपलोग सास्त्रार्थ करिये।

मण्डनने कहा एकही ब्रह्म है दूसरा नहीं है, ऐसी जो आपने प्रतिज्ञा की है, सो ठीक नहींहै, क्योंकि एक तो इसमें कोई वेदवाक्य प्रमाण नहीं है, दूसरा प्रत्यक्ष विरोध है, क्योंकि जड, चैतन्य भेदसे अनन्त जीव हैं, सुषुप्तिसे जिसकालमें उत्थान होताहै,तब मनुष्य कहता है"सुखमस्वाप्सं न किञ्चन वेदिषम्" मैं ऐसा सुखसे सोया कि कुछभी न जाना अब जडता, और सुख, दोनोंका इसको स्मरण होताहै,

यदि जीव केवल चेतन ही हो, तब जडताका स्मरण उसे न हो, पर वह होता है इसीसे जाना जाता है, जीव जड चैतन्य उभयरूप है और फिर सबमें एक चेतन भी साबित नहीं होता है, यदि सबमें एकही चेतन हो तब एकको सुख होनेसे सबको सुख होना चाहिये, एकको दुःख होनेसे सबको दुःख होना चाहिये, ऐसा तो नहीं देखते हैं, इसीसे जाना जाता है, चेतन भी नाना हैं।

शंकरजी कहते हैं, हमारी प्रतिज्ञा सत्य है, क्योंकि एक तो इस वार्ताको श्रुति कहती है ॥ "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्तिकिञ्चन ॥" ब्रह्म एक है अद्वितीय है अर्थात् द्वैतसे रहित है और इस जगत्में जो कुछ दिखाता है, वह वास्तवमें कुछ भी सत्य नहीं है। "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ॥" एक जो परमात्मादेव है सो, सम्पूर्ण भूतोंमें छुपाहुआहै सर्वव्यापीहै, सम्पूर्ण भूतोंका अन्तरात्मा है। इत्यादि अनेक श्रुतिवाक्य चेतनकी ऐक्यता में प्रमाण हैं ॥ "एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय ॥" तिस एकही चेतनमें मायाके सम्बन्धसे जगत् सर्जनकालमें ऐसी इच्छा हुई मैं एकसे अनेक रूप होजाऊँ और प्रजारूप करके उत्पन्न होऊँ ॥ "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् ॥" प्रथम लिंग शरीरोंको उत्पन्न करके आपही उनमें प्रवेश करता भया ॥ "तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदापःस प्रजापतिः ॥ १ ॥" वही चेतन अग्निरूप है, वही आदित्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है वही शुद्ध है, वही ब्रह्महै वही जल है, वही प्रजापति है ॥ १॥ "त्वं स्त्री पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः" ॥ २ ॥ तुमहीं पुरुष हो, तुमहीं स्त्रीरूप हो, कुमार और कुमारी भी तुमही हो, तुमहीं वृद्ध होकर दण्ड करके चलते हो, तुमहीं विश्वतोमुख हो, अर्थात् सर्वरूप तुमही हो ॥ २ ॥ इस तरहके अनेक श्रुतिवाक्य चेतनके एक होनेमें प्रमाणहैं। और जो तुम प्रत्यक्ष विरोध कहते हो वह शास्त्र करके बाधित है, चन्द्रमण्डल एक बीताभरका दिखाता है और ज्योतिष शास्त्रमें तिसका दशहजार योजनका प्रमाण लिखा है. अब शास्त्र करके तिस बीता भरका प्रमाणका बोध होजाता है यदि कहो चन्द्रमाका जो बीता भरका ज्ञान है, सो भ्रम करके है, तब आत्माका नानात्वज्ञान भी भ्रम करके है क्योंकि निरवयव निराकार आत्माका भेद विना

उपाधिके किसी प्रकारसे भी नहीं बनता है और न कोई दृष्टांत व प्रमाणही निरवयवके भेदमें मिलता है। इन हेतुवोंसे भी आत्मा एकही साबित होता है और जो तुमने कहा है जीवन जड चेतन उभयरूप है, सो ऐसा कथन भी तुम्हारा वेदविरुद्ध है और युक्ति विरुद्ध भी है. क्योंकि श्रुति तिस चेतन ब्रह्मको ही ब्रह्मरूप करके कहती है। " अयमात्मा ब्रह्म " यह जीवात्मा ही ब्रह्म है "प्रज्ञानं ब्रह्म" ज्ञानस्वरूप ही ब्रह्म है । "तत्त्वमसि" तुमही ब्रह्मरूप हो। "अहं ब्रह्मास्मि" में ही ब्रह्म हूँ । "तत्त्वमेव त्वमेव तत्" ब्रह्म तुम हो और तुम ब्रह्म हो। ऐसे २ अनेक श्रुति वाक्य जीवात्माको ब्रह्मरूप और ज्ञानस्वरूप कथन करते हैं। फिर जड चेतनका अभेद भी नहीं, होसकता है, क्योंकि दोनों परस्पर विरोधी पदार्थ हैं जैसे शीत, उष्ण एक स्थानमें नहीं रहसक्ते हैं, जैसे जड चेतन भी एकरूप नहीं होसक्ते हैं, इन्हीं युक्ती प्रमाणोंसे सिद्ध होता है, जो जीव जड चेतन उभयरूप नहीं है और सुषुप्तिसे उत्थान कालमें जो जीव कहता है, मैं ऐसा सुखरूप होकर सोया कि मेरेको कोई भी ज्ञान न रहा, यह प्रतीति अज्ञान उपाधी जीवकी जो है, उसको बोधन करतीहै, जीवके जडभावको बोध नहीं करती है; जैसे सूर्य्यमें तम कदापि नहीं रहसक्ता है, तैसे चेतन जीवमें जडता कदापि नहीं रहसक्ती है। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" ब्रह्म सद्रूप ज्ञानस्वरूप अनन्तस्वरूप है, यह श्रुती ज्ञानस्वरूप चैतन्य स्वरूप जीवको कहती है, और अनेक घटोंमें एकही सूर्य्यका प्रतिबिंब पडता है, परन्तु किसी घटमें धूली भरी है, किसीमें धूम भराहै, किसीमें गंगाजल वगैरह है, प्रतिबिंबका भेद नहीं है, किन्तु उपाधियोंके भेदमें प्रतिबिंब भी भेद प्रतीत होने लगता है, तैसा एक जीवको सुख दुःख होनेसे आत्मामें सुख दुःखकी प्रतीति होती है, वास्तवमें चेतनका भेद नहीं है और जैसे एकही शरीरमें एक जीवात्मा व्यापक है, हाथमें दुःख होनेसे पांवमें दुःख नहीं होता है, हाथमें सुख होनेसे पांवमें सुख नहीं होता है, तैसे ब्रह्मांडभरके शरीर एकही आत्माके हैं एकमें दुःख सुख होनेसे दूसरेमें नहीं होता है इत्यादि युक्तियोंसे भी आत्मा एकही ब्रह्मांड भरमें साबित होता है, इसलिये हमारी प्रतिज्ञा सत्य है।

फिर शंकरजी कहते हैं "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" ज्ञानके विना मुक्ति नहीं होती है "ज्ञानेनैव तु कैवल्यम्" आत्मज्ञान करके ही कैवल्य जो मोक्ष है, सो होताहै, इतर कर्मों करके मुक्ति नहीं होती है "न कर्मणा न प्रजया" न कर्मों करके और न सन्तति करके मुक्ति होती है। इत्यादि अनेक श्रुति वाक्य कर्मों-करके मोक्षका निषेध करते हैं। और स्वर्गकी प्राप्तिका नाम मोक्ष नहीं है क्योंकि स्वर्ग भी एक लोकान्तर है, उत्पत्ति नाशवाला है, यदि स्वर्गकी प्राप्तिका नाम मोक्ष कहोगे, तब वह अनित्य होजायगी। और मोक्षको नित्य लिखा है, "न स पुनरावर्तते" वह मुक्त फिर हटकर नहीं आता है इत्यादि अनेक श्रुतिवाक्य मोक्षको नित्य कहते हैं, और मंत्ररूप देवता नहीं है, किन्तु देवता भी मनुष्यकी तरह व्यक्तिमान है॥ "वज्रहस्तः पुरन्दरः" वज्रको हाथमें लिये हुए इन्द्र है, इस तरहके वेदवाक्य देवताओंको मूर्त्तिमान् बताते हैं, फिर देवतोंका दैत्योंके साथ युद्धभी लिखा है और खानपानादि व्यवहारभी लिखा है, इसलिये भी देवता मूर्त्तिमान् हैं और कर्मका नाम ईश्वर नहीं है, क्योंकि कर्म नाम क्रिया-का है "यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्" जो परमात्मा जगत्की उत्पत्ति कालमें प्रथम ब्रह्माको उत्पन्न करता भया और तिसके प्रति वेदोंको देता भया वही जग-त्का कर्त्ता ईश्वर है और जितना कार्य है, वह स्वतः उत्पन्न नहीं होता है, किन्तु उत्पन्न करनेवाला कोई दूसरा है तिसका सत्कार होता है, इत्यादि अनेक युक्तियें भी ईश्वरके सद्भावमें प्रमाण हैं, इसलिये हे मण्डन! तुम्हारी प्रतिज्ञा असत्य है इस प्रकार विवाद होते जब कि, भोजनका समय हुआ तब भारतीने आकर अपने पतिसे कहा "भोजनं कुरु" और शंकराचार्य्यसे कहा "भिक्षां कुरु" तब दोनोंने जाकर भोजन किया तत्पश्चात् अपने २ स्थान पर चले गये।

दूसरे दिन सबेरे स्नानादि क्रिया करके फिर दोनों सभामें आकर अपने२ पक्षपर श्रुति युक्तियोंको कहकर शास्त्रार्थ करने लगे और सब सभा साधु२शब्दको पुकारने लगी जब कि, भोजनका समय हुआ तब पूर्वकी तरह भारतीने आक-रके दोनोंको भोजनके लिये कहा, दोनोंने जाकर भोजन किया इसी तरह बहुत दिनोंतक शास्त्रार्थ होता रहा तब एक दिन मण्डनमिश्रने शंकरजीसे कहा जीव

ईश्वरका जो अभेद आप कहतेहैं, सो इसको फिर मेरे प्रति कहिये, क्योंकि ठीक२ यह मेरी समझमें नहीं आया है तिसको फिरसे कहिये।

शंकरजीने कहा जैसे एक ही आकाश घट मठादि उपाधियोंके भेद करके घटाकाश मठाकाश रूप भेदको प्राप्त होजाता है, उपाधियोंके विद्यमानकालमें भी आकाशका भेद नहीं है, क्योंकि आकाश निरवयव है, केवल व्यवहारमात्र ही होता है और उपाधियोंके नाशकालमें भी आकाशका भेद नहीं है आकाश एक ही है घटादि उपाधियोंके चलने कालमें भी आकाश चलता नहीं है। किन्तु उपाधियें ही चलती हैं, तैसे एक जो निरवयव निराकार विभु चेतन है, शरीरोंके भेदसे भी तिसका भेद नहीं है, शरीरोंके चलनेसे वह चलता नहीं, क्योंकि वह व्यापक है, जो कि परिच्छिन्न वस्तु होती है, वह चलती फिरती है, व्यापकमें चलना फिरना नहीं बनता है, वह हमेशा एक रस ज्योंका त्योंही रहता है इसी अर्थको वेदने भी कहा है''

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वदन्तिके ॥
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्य बाह्यतः ॥ १ ॥

तदेजति वह चेतन उपाधि करके चलता प्रतीत होता है, तन्नैजति वह उपाधिसे विना चलता नहीं है। तद्दूरे वह चेतन अज्ञानी पुरुषोंको अतिदूर है, क्योंकि वह तिसको वैकुंठादिकोंमें बैठा हुआ मानते हैं। तद्वदन्तिके ज्ञानी पुरुषोंको वह अतिसमीप है, अपना आत्मा होनेसे, तदन्तरस्य सर्वस्य और सर्व जीवोंके अन्तर होनेसे तदु सर्वस्य बाह्यतः वह चेतन व्यापक होनेसे सबके बाहर भी है॥ १ ॥

अनेजदेकम्मनसो जवीयो नैतद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्शत्। वह चेतन चलता नहीं है, एक है, मनसे भी वेगवाला है, क्योंकि मन चलकर जाता है वह पहिलेसे ही प्राप्त है, इसको सब इन्द्रिय प्राप्त नहीं होसक्ती हैं॥ १ ॥

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण-
मस्नाविरंशुद्धमपापविद्धम् ॥ १ ॥

वह चेतन व्यापक है शुद्ध है लिङ्ग शरीरसे रहित है, स्थूलसे भी रहित है, नाडियोंसे भी रहित है, पापके सम्बन्धसे भी रहित है, इत्यादि अनेक श्रुति-वाक्य भी तिस चेतनको एकही कथन करते हैं॥ १ ॥ और उद्दालक ऋषिने भी अपने पुत्र श्वेतकेतुके प्रति नव वार: तत्त्वमसि महावाक्य करके अभेदका उपदेश किया है, और भी जितने वेदवाक्य है, वह सब जीवब्रह्मके अभेदको ही कहते हैं, अपने अर्थमें सृष्टि वाक्योंका भी तात्पर्य्य नहीं है, किन्तु अध्यारोप करके जीव ईश्वरके अभेदको ही कथन करते हैं, और कर्मकाण्डमें जितने कि, हुंफटादिक शब्द हैं, यह सब जप करनेके योग्य भी नहीं हैं, क्योंकि निरर्थक हैं अर्थात् इनका कुछ भी अर्थ नहीं है, और बिना अर्थवाले शब्दोंका जप करना भी व्यर्थ है, इस लिये महावाक्योंका ही जप करना चाहिये क्योंकि ये सब अर्थके सहित हैं।

मण्डनमिश्रने कहा—"तत्त्वमसि" आदिक जो मन्त्र हैं इनका अपने अर्थमें तात्पर्य नहीं है, किन्तु यज्ञका कर्ता जो यजमान है, तिसकी स्तुतिमें तात्पर्य है क्योंकि यह मन्त्र सब यज्ञके अङ्ग हैं।

शंकरजीने कहा—यह महावाक्य क्रियाका अङ्ग नहीं है, क्रियाके अङ्ग जो मन्त्र हैं, वह कर्मकाण्डमें पढे गये हैं यह सब वेदके ज्ञानकाण्डमें पठन किये हैं, इसलिये यजमानकी स्तुतिमें इनका तात्पर्य नहीं है, किन्तु जीव ब्रह्मके अभेद बोधन करनेमें इनका तात्पर्य्य है।

मंडन कहते हैं यह मन्त्र जीवको ब्रह्मदृष्टि करना कहते हैं, अर्थात् जीवमें ब्रह्मदृष्टि करै जीवको ब्रह्मरूप नहीं कहते हैं।

शंकरजी कहते हैं—दृष्टि विधान करनेवाले जो वाक्य हैं, उनमें प्रेरणा आती है। जैसे कि, "मनो ब्रह्म इत्युपासीत" मनको ब्रह्मरूप करके उपासना करै। "अन्नं ब्रह्म इत्युपासीत"॥ अन्नको ब्रह्मरूप करके उपासना करै। इस प्रकार महावाक्योंमें कोई भी प्रेरणा शब्द नहीं है, जो तुम जीवको ब्रह्मरूप करके उपासना करो, इस प्रकार प्रेरणाका विधायक महावाक्योंमें कोई भी शब्द नहीं है। किंतु 'असि' पद है, तुमहीं ब्रह्महो, फिर विधिवाक्योंमें फलका भी विधान किया है, ऐसा कर्म करनेसे पुरुषको ऐसा फल होगा, महावाक्योंमें

कहीं भी फलका विधान नहीं है और महावाक्योंमें साक्षात कहा है, तूं ब्रह्म है, तब कैसे आप कहते हैं कि ब्रह्म दृष्टिविधानकी है।

मण्डन कहते हैं–जैसे यज्ञादि कर्मोंका फल स्वर्ग कहा है, तैसे ज्ञानका फल भी मुक्ति है और तिस ज्ञानकी प्राप्तिके लिये श्रवणमननरूपविधिको भी कहा है।

शंकरजी कहते हैं–यदि विधिके अधीन तुम मुक्तिको जानोगे, तब मुक्ति भी अनित्य ही होजायगी, क्योंकि जैसे स्वर्ग सुख कर्मोंसे जन्य होनेसे अनित्य है तैसे मोक्षसुख भी कर्मसे अर्थात् विधिसे जन्य होनेसे अनित्य ही होजायगा जो पदार्थ उत्पत्तिवाला होता है, वह नाशवान् भी अवश्यही होता है, सो मोक्ष, सुख, नित्य है, इसलिये वह कर्मोंसे जन्य नहीं है इसीलिये ज्ञानकी प्राप्ति श्रवण मनन निधिध्यासनसे कहे हैं, श्रुति भी कहती है।

"आत्मावारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निधिध्यासितव्यः" आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये श्रवण करना, मनन करना, निधिध्यासन करना चाहिये। कर्म करनेको श्रुति नहीं कहती है।

मण्डन कहते हैं जीव अल्पज्ञ है ईश्वर सर्वज्ञ है, अल्पज्ञकी सर्वज्ञके साथ ऐक्यता बनती नहीं है, यदि मानोगे तब जीवके अल्पज्ञत्वादिक धर्म ईश्वरमें चले जायँगे, या ईश्वरके सर्वज्ञत्वादिक धर्म जीवमें आनेसे जीव भी सर्वज्ञ होजायगा, इसलिये दोनोंके अभेदको श्रुतिवाक्य नहीं कहते हैं, किन्तु दोनोंकी तुल्यताको कहते हैं, क्योंकि चेतन कर दोनों तुल्य हैं।

शंकरजी कहते हैं, श्रुतिमें तुल्यताका वाचक कोई भी पद नहीं है, किन्तु अभेदके बोधक असि आदिक पदहैं, इसी हेतुसे तुल्यता श्रुति नहीं कहती है, किन्तु अभेदको ही कहती है, सो अभेदज्ञान भागत्याग लक्षणा करके होता है, जीवके अल्पज्ञत्वादिक धर्मोंको त्याग करके और ईश्वरके सर्वज्ञत्वादिक धर्मोंका त्याग करके दोनों चेतनोंकी ऐक्यता होजाती है।

मण्डन कहते हैं, शास्त्रमेंही जीवको ब्रह्मका उपासक और ब्रह्मको उपास्य कहाहै, उपास्य उपासकभाव भेदवालोंका ही होता है, अभेदवालोंका नहीं होता है, फिर जीवको कर्मोंका कर्ता कहा है, ईश्वरको फल प्रदाता कहा है, जीवको कर्मोंके

फलका भोक्ता कहा है, ईश्वरको अभोक्ता कहा है, फिर श्रुतिमें भी कहा है एकही बुद्धिरूपी वृक्ष पर दो पक्षी रहतेहैं, एक कर्मोंके फलका भोक्ता है, दूसरा भोक्ता नहीं है, किन्तु प्रकाशही करता है, इत्यादि श्रुतिवाक्यभी जीवब्रह्मके अभेदको कहते हैं, ये सब क्या झूठे होसक्ते हैं।

उत्तर–शंकरजी कहते हैं–जो शास्त्र जीव ईश्वरके भेदको प्रतिपादन करता है, निरुपाधिक भेदको प्रतिपादन नहीं करता है, क्योंकि जीवकी उपाधि विद्याहै, ईश्वरकी उपाधि माया है, उन दोनों उपाधियोंके सहित भेदको प्रतिपादन करताहै, वह उपाधि दोनों कल्पित हैं, इसलिये भेदभी कल्पित है, दोनों उपाधियोंका भागत्याग लक्षणा करके त्याग करनेसे भद नहीं रहताहै और जितने भेदके प्रतिपादिक वाक्य हैं, उन सबका अपने अर्थमें तात्पर्य नहीं है किन्तु आरोप्यमें तात्पर्य है, इस प्रकार भेदाभेदमें शास्त्रार्थ बहुत दिनों तक होता रहा अन्तमें मण्डन मिश्र हारगये और शंकरजीसे कहने लगे भगवन्! अज्ञानरूपी निद्रामें हम सोयेथे आपकी कृपासे हम अब जाग उठे हैं। मण्डनमिश्रके गलेमें जो फूलोंकी माला थी वह भी कुम्हला गई इतनेमें भोजनका समय भी होगया तब भारतीने शंकरजीसे कहा "भिक्षां कुरु" और अपने पतिसे भी कहा "भिक्षां कुरु" इस प्रकार पतिसे कहनेका तिसका यह तात्पर्य था तुम हार गये हो और अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण करो।

जब कि दोनों भोजन करचुके तब मण्डनमिश्रने शंकरजीसे कहा मैने जो आपके साथ संन्यासको धारण करनेकी प्रतिज्ञा की है, उसको अब मैं पूरा करताहूँ आप मेरेको संन्यासको धारण कराइये मैं आपका शिष्य बन चुका हूँ। तब मण्डनमिश्रकी स्त्री भारतीने पतिसे कहा आप समग्ररूपसे नहीं हारे हैं, क्योंकि मैं अभी अर्द्धांगी आपकी बैठी हूँ, जब कि मेरेको यह जीतेंगे, तब आप पूरे हारेंगे शंकरजीसे भारतीने कहा मेरेसे शास्त्रार्थ करिये हमको जब कि आप जीतलेवेंगे तब आपकी पूरी जीत होगी।

शंकरजीने कहा हम स्त्रीसे शास्त्रार्थ नहीं करेंगे, शारदाने कहा पूर्व युगोंमें याज्ञवल्क्यादिकोंने गार्गी और सुलेमा आदिकोंसे शास्त्रार्थ किया है, यदि स्त्रीके साथ शास्त्रार्थ करनेमें दोष होता तब वह क्यों करते? इसलिये स्त्रीके साथ

शास्त्राथ करनेमें कोई दोष नहीं है, आपको हमारे साथ शास्त्रार्थ अवश्य ही करना पडेगा, यदि नहीं करसकोगे, तब हमारे पतिकोभी तुम संन्यासी नहीं कर सकोगे, लाचार होकर शंकरजीको भारतीके साथ शास्त्रार्थ करनाही पडा। जब कि शंकरजीका भारतीके साथ शास्त्रार्थ होने लगा तब भारती कामशास्त्र विषयक प्रश्नोंको करने लगी कौन २ तिथिमें कामदेव स्त्रीके किस किस अङ्गमें रहता है? और कामके धनुष्बाण कौन हैं? और कामकी सेना कौन है? इस प्रकारके प्रश्नोंको भारती करने लगी। शंकरजीने कामशास्त्रको पढा नहीं था, क्योंकि वह बाल्यावस्थासे ब्रह्मचारी थे, इस लिये वह इन बातोंको जानते ही नहीं थे, कुछ देरतक चुप रहकर पश्चात् शंकरजीने कहा हे भारती! एक महीनेकी मोहलत हमको देओ एक महीनेके पश्चात् आकर हम तुमसे शास्त्रार्थ करेंगे भारतीने इस वार्ताको मानलिया।

तब शंकरजी वहाँसे चल दिये और एक वनमें जाकर ध्यानावस्थित होकर देखने लगे, उनको मालूम हुआ कि अमुक नगरके राजाने इदानीं कालमें शरीरका त्याग किया है, तब समाधिसे उतरकर एक पर्वतकी कन्दरामें जाकर अपने शिष्योंसे कहनेलगे, हम अपने शरीरको त्यागकर अमुक राजाके शरीरमें प्रवेश करजायँगे क्योंकि उस राजाने अपने शरीरका त्याग करदिया है, और राजाके शरीरमें रहकर हम कामशास्त्रको पूरीतौरपर जानलेवेंगे तुम लोग हमारे शरीरकी रक्षा करना कोई जंतु इसको भक्षण न करजाय। इतना कहकर शंकर-जीने अपने शरीरको छोडदिया और तुरंतही तिस राजाके शरीरमें प्रवेश करगये, इधर राजाके सम्बन्धियोंने चिताकी तैयारी करदी थी कि इतनेमें राजा उठकर बैठगये। तब लोग बडे हर्षको प्राप्त हुए और मङ्गलाचार होने लगे, राजाको स्वर्णकी पालकीमें बिठाकर राजभवनमें लेआये और बहुतसा दान पुण्य राजासे करवाया और स्नान कराकर सुन्दर वस्त्रोंको पहराकर राजसिंहासनपर राजाको बिठा दिया अब शंकरजी राजा बन गये।

मंत्री और भृत्य सब हाथ जोड़कर खड़े होगये और उनकी आज्ञाको मानने लगे, अब यतिराज्य पृथ्वीकी पालना करने लगे, यतिराजकी धर्मसम्बन्धी चेष्टाको देखकर मन्त्री परस्पर मिलकर कहने लगे, राजा मर करके फिर जीतो

गये हैं परन्तु यह राजा वह नहीं हैं क्योंकि जो इनमें गुण हैं वह उस राजामें नहीं थे, यह तो कोई देवता हैं, या कोई योगिराज हैं, मालूम होता है कि थोडे दिनोंके लिये यह राज्य भोग करनेको आये हैं, जिस कालमें इनका मन भोगोंसे उदास होगा, तुरंत ही यह चल देवेंगे। कोई ऐसा उपाय करना चाहिये, जिस करके यह अब जल्दी न जायँ सब मंत्रियोंने मिलकर ऐसा विचार किया जहाँ तहाँ वनादिकोंमें और पर्वतोंमें जितने कि मृतक शरीर हैं, वह सब जलवा दिये जायँ, जब कि सब मृतक शरीर जलाये जांयँगे तब इनकाभी मृतक शरीर जहां पडा होगा वह भी जलजायगा फिर यह नहीं जासकैंगे, किन्तु इसी शरीरमें रहेंगे और धर्मसम्बन्धी राज्यको करेंगे। ऐसा विचार करके मंत्रियोंने नौकरोंको हुक्म देदिया तुम वनों और पर्वतोंमें जाकर जहाँतहाँ खोज २ कर मृतक शरीरोंको जलादेवो और राज्य प्रबन्धके भारको मंत्रियोंने अपने ऊपर लेलिया और राजाको विषय भोगोंमें लगादिया, अब राजा रानियोंके साथ विषयानन्दको अनुभव करने लगे और अतिरमणीक २ भोगोंको भोगने लगे और जो लोग कामशास्त्रमें बडे निपुण थे, उनके साथ मिलकर राजा कामशास्त्रका विचार करने लगे और दश पांच ही दिनोंमें शंकर-जीने सब कामशास्त्रके तात्पर्यको जान लिया और कामशास्त्रमें एक नवीन ग्रन्थकी रचना भी की। और विषय भोगोंमें ऐसे लम्पट होगये जो उनका अब अपना कर्तव्य भी भूलगया और फिर हटकर जानेकी सुध भी न रही, जब कि, एक मासमें दो तीन दिन बाकी रह गये और शंकरजी अपने शरीरमें हटकरके न आये तब शिष्यलोग बहुत घबराये और शंकरजीकी खोज करने लगे और शोक करके व्याकुल होगये तब पद्मपादाचार्य्यने सबको धैर्य दिया और कहा शोक करना उचित नहीं है, किंतु धैर्यसे और उद्यमसे काम सिद्ध होता है ऐसा विचार करके शिष्यलोग आमरक राजाके देशमें गये और इधर उधर पूछनेसे उनको मालूम हुआ कि इस देशका राजा मरकर फिर जीगया है, तब उन्होंने जान लिया कि गुरूजी राजभोगमें मस्त होगये हैं, अब उनको हम स्मरण करावें। जिस कार्यके लिये तुम आये उसको चलकर पूरा करो, इन भोगोंका त्याग करो और आपके करारके दिन भी अब समीप आगये हैं, ऐसे

विचार करके फिर विचार करने लगे किस तरह राजासे चलकर भेंट करैं यदि इस साधुवेषसे जायँगे तब क्या जानैं कोई राजाका नौकर अन्दर राजाके पास जाने दे या न दे, इसलिये कोई दूसरा भेष बनाना चाहिये तब उनमेंसे एकने कहा गवैयोंका भेष बनाना चाहिये, क्योंकि राजाके पास इसतरह जानेसे कोई भी नहीं रोकेगा, उन्होंने नगरके बाहर गवैयोंका भेष बनाया और राज-द्वारपर जाकर राजाके पास इस खबरको भेजा जो एक बडे गुणी रागी आये हैं, राजाने कहा उनको दरबारमें बुलावो । वह दर्बारमें जाकर हाजिर होगये और उन्होंने देखा तो राजा स्वर्णके सिंहासन पर बैठे है, और चारों तरफ बन्दीगण स्तुति कररहे है, और स्वर्णका छत्र शिरपर झुलरहा है, और अनेक प्रकारके सुगंधवाले पुष्प चारोंतरफ रखे हैं। और बडे कोमल कोमल रेशमी वस्त्रोंके विछोने विछे हैं, और अनेक दास और दासियें हाथ जोडकर खडे हैं मानो इन्द्र अपने सिंहासन पर विराजमान है, राजाकी चेष्टाको देखकर शिष्यगणोंने भी जान लिया जो गुरु हमारे राज्यके भोगोंमें लम्पट होरहे हैं, अब इनको यहाँसे निकालना चाहिये ऐसा विचार करके वह राजाके सम्मुख मूर्च्छना स्वरसे उत्तम उत्तम रागोंको गाने लगे। उनके गायनको सुन कर सब लोग चित्रकी तरह होगये और रागमें ही अपना सर्व तात्पर्य राजा तो उन्होंने समझा दिया और तत्त्वमसि महावाक्योंको भी उन्होंने रागमें ही गायन किया फिर एक रागमें ऐसा गायन किया कि, मन बुद्धि और पंचकोशोंसे जो परे है वह तुम्हारा आत्मा है, और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदिकोंसे भी तुम न्यारे हो और इन सबके तुम साक्षी हो और योगीज-नोंके जो कि, ध्यानमें भी नहीं आता है, और जिसकी प्राप्तिके लिये मुमुक्षु-जन बडे २ भारी और कठोर नियमोंको धारण करते है वही तुम्हारा स्वरूप है, जिसकी प्राप्तिके लिये कपी कर्मोंको और उपासक उपासनाको करते है, वही तुम्हारा अपना आप है।

शंकरजी भी जान गये हमारे शिष्यवर्ग सब यहाँपर पहुँच गये हैं रागके पूरा होनेपर राजाने उनसे कहा तुम बडे गुनी हो हम तुम्हारे तात्पर्यको जान गये हैं, अब तुम इनाम लेकर अपने स्थानको जावो राजासे इनाम लेकर रागी-

लोग अपने स्थान पर पहुंचे और परस्पर कहने लगे अब तो गुरूजी जानगये हैं । शीघ्रही अब यहाँसे पर्वतकी कन्दरामें चलना चाहिये जहाँपर कि गुरूजीका शरीर पडा है इधर तो शिष्यलोग कन्दराकी तरफ चले और उधर मंत्रियोंके भेजे हुए नौकर भी कन्दरामें पहुँच गये और शंकरजीके शरीरके जलानेकी तैयारी भी उन्होंने करदी । इतनेमें शिष्यवर्ग भी वहाँपर पहुँच गये और इधर सभामें सिंहासन पर बैठे २ राजाको मूर्च्छा होगई । उसी मूर्च्छामें शंकरजी राजाके शरीरका त्याग करके अपने शरीरमें प्रवेश करगये । वह मंत्रियोंके नौकर आश्चर्य्य होकर वहाँसे चले आये इधर तो राजमन्दिरमें हाहाकार शब्द होनेलगा और उधर शंकरजीको देखकर शिष्यलोग बडे हर्षको प्राप्त हुए और सबने शंकरजीको प्रणाम किया अब शंकरजी अपने योगबलसे शिष्योंके सहित आकाशमार्गसे होकर मंडन मिश्रके मकानमें पहुँच गये आगे मंडन उठकर शंकरजीके चरणोंपर शिरको रखकर कहने लगे भगवन्, आपने हमारे ऊपर बडी अनुग्रह की है और बडे सत्कारपूर्वक उनको बिठाया फिर भारतीके साथ शास्त्रार्थ करनेके लिये सभाकी तैयारी हुई ।

जब कि सब लोग आकर बैठे और भारती भी आकर बैठी तब शंकरजीका भारतीसे शास्त्रार्थ होने लगा और दो चार दिनों तक शास्त्रार्थ होता रहा पश्चात् शंकरजीने भारतीको जीत लिया अबतो मण्डनमिश्रकी समग्र हार होगई, तब मण्डनमिश्रने तुरन्त ही संन्यासको शंकरजीसे धारण कर लिया और जो उपदेश जन्ममरणसे छुडानेवाला है, उसी महावाक्यके उपदेशको शंकरजीने तिसको दिया फिर कहा—हे मण्डन ! तुम देह नहीं हो, क्योंकि देह जड और अनित्य है, और तुम्हारा स्वरूप चेतन तथा नित्य है, देह उत्पत्ति नाशवाली है, आत्मा उत्पत्तिसे रहित नित्य मुक्त है ।

फिर सब संसारी लोग ऐसा कहते हैं—यह मेरा कान है. यह मेरी नाक है, यह मेरा चक्षु है, यह मेरा हाथ है. पांव है ऐसे ही सब लोग कहते हैं । ऐसा कोई भी नहीं कहता है कि मैं देह हूँ, या मैं कान हूँ. मैं नाक हूँ, मैं हाथ हूँ, मैं मुख हूँ. इस युक्तीसे भी यह सिद्ध होता है कि, आत्मा देह प्राणादिकोंसे परे है जैसे घरका मालिक घर नहीं है, किन्तु

घरसे परे है और घर तिसके निवासका स्थान है, तैसे देहका स्वामी भी देहसे अलग है, देह नहीं है किन्तु देह तिसका घर है, अर्थात् निवासका स्थान है। जैसे आकाश सर्वव्यापक है और निरवयव है, तथापि स्वच्छ जलादिकोंमें ही तिसका प्रतिबिंब पडता है और वही तिसकी उपलब्धिके स्थान हैं, तैसे आत्मा भी सर्वव्याप्त है तथापि देह ही उसकी उपलब्धिका स्थान है। फिर जिस पदार्थमें पुरुषका मेरा शब्द होता है, जैसे कि, मेरा घर मेरा मंदिर, मेरा खेत । वह घर मंदिर तथा खेतादिक तिससे भिन्न हैं, तैसे देहादिकोंमें मेरा शब्द करने वाला आत्मा भी देहादिकोंसे भिन्न है और देह इन्द्रियादिक सबका वह द्रष्टा है, और देह इन्द्रिय प्राण भी आत्मा नहीं है, क्योंकि स्वप्नहै इन्द्रिय सब लय होजाते हैं और स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नमें नये देह इन्द्रिय आदिकोंको रचलेता है और मन भी आत्मा नहीं है, क्योंकि सुषुप्ति अवस्थामें मनभी लय होजाता है और आत्मा सुषुप्तिमें भी विद्यमान रहता है तब सुखका अनुभव कदापि न हो और अनुभव अवश्य होता है, जब कि, जागता है, तब कहता है, मैं ऐसा सुखपूर्वक सोया जो मेरेको कोई भी ज्ञान न रहा। ऐसा स्मरण होता है, जो २ स्मृति ज्ञान होता है, वह अनुभव पूर्वक ही होता है, विना अनुभवके स्मृति नहीं होती है, बस इसीसे साबित होता है, जो आत्मा सुषुप्तिमें भी विद्यमान है, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाका और कारण, सूक्ष्म, स्थूल इन तीनों शरीरोंका आत्मा साक्षी है और इनसे पृथक् है और प्राणभी जड है, क्योंकि सुषुप्ति अवस्थामें सब इन्द्रिय लय होजाते है और प्राण लय नहीं होते है, किन्तु चलते ही रहते हैं, तथापि प्राणोंको कोई भी ज्ञान नहीं होता है, क्योंकि, वह जड हैं इसलिये प्राणोंको भी सत्तास्फूर्त्ति देनेवाला आत्मा ही है, प्राणादिक सब आत्मा नहीं हैं।

आत्मा सबसे न्यारा है, और सबका साक्षी है, देहादिके साथ मिलकर कर्ता है और देहादिकोंके सम्बन्धसे रहित अकर्ता है, कर्तृत्वपना भी देहादिकोंके साथ तादात्म्य अध्यास करके आत्मामें आरोप किया जाता है, वास्तवमें अकर्ता ही है, "असंगोऽयं पुरुषः" । यह आत्मा असंग है, अपने स्वरूपके अज्ञान करके हादिकोंमें अहन्ताको और गेहादिकोंमें ममताको करता है और अपनेसे भिन्न

जानकर देवता तथा इतरोंको पूजता फिरता है। कामना और तृष्णाका पशु बन बनकर अचेतनोंको पूजता है और उनकी उपासनाको करता है, जो कि इसके भोगके लिये सृष्टि आदि कालमें रचे गये हैं और इसके अधीनही उनकी क्रिया होती है, वह कैसे पूज्य होसक्ता है, पूजनके योग्य चेतन ही है, जड नहीं है और अज्ञानके वशमें होकर अकर्तव्यको कर्तव्य जानता है, और कर्तव्यको अकर्तव्य जानताहै, घृणाका भण्डार जो शरीर है इसमें अतिराग होना स्त्री पुत्रादिकोंमें मोहका होना ही अज्ञान है, "ब्राह्मणोऽहं, क्षत्रियोहं, वैश्योऽहं शूद्रोऽहं" ये प्रतीतियें अज्ञानको विषय करती हैं और येही अज्ञानके होनेमें प्रमाण है, निर्धर्मिक आत्मामें धर्मोंकी कल्पना करनी शुद्धमें अशुद्धकी कल्पना करनी इसीका नाम अज्ञान है, न मैं ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय हूँ, न वैश्य हूँ, न शूद्र हूँ, किन्तु सच्चिदानन्द स्वरूप एकं अद्वितीय हूँ इसीका नाम ज्ञान है। यही ज्ञान जन्म मरणरूपी संसारसे छुडानेवाला है और जैसे महामत्स्य नदीके कभी इस कूलमें और कभी उसकूलमें रहता है और कभी मध्यमें रहता है परन्तु मत्स्यका नदीके कूलोंके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है किन्तु उनसे न्यारा है। तैसे आत्माभी कभी जाग्रतमें और कभी स्वप्नमें और कभी सुषुप्तिमें रहता है, परन्तु आत्माका भी इनके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है और जाग्रत्में स्वप्न नहीं, स्वप्नमें जाग्रत नहीं, सुषुप्तिमें जाग्रत स्वप्न नहीं, जाग्रत स्वप्नमें सुषुप्ति नहीं है किन्तु तीनों अवस्था परस्पर व्यभिचारी हैं, आत्माका व्यभिचार नहीं है क्योंकि आत्मा सब अवस्थामें ज्योंका त्यों एकरस रहता है, वास्तवमें तो सब अवस्था आत्मा में ही कल्पित हैं, सद्रूप और चैतन्य स्वरूप सब कारण कार्य जगत्का अधिष्ठान स्वरूप आत्माही है। वही तुम्हारा स्वरूप है, अर्थात् तुम वही शुद्धस्वरूप हो, इसमें कोई संदेह नहीं है।

इस प्रकार शंकरजीने मंडनमिश्रको उपदेश करके पश्चात् तिसका नाम सुरेश्वराचार्य्य रख दिया और मण्डनमिश्रने भी संन्यासको लेकर अपनेको कृतकृत्य माना और घरका त्याग करके शंकरजीके साथ चलदिया। मण्डनमिश्रको साथ लेकर शंकरजी वहाँसे फिर दक्षिण दिशाको चल पडे और चलते २ महाराष्ट्रदेशमें पहुँच गये। वहाँ पर लोगोंको जीवब्रह्मके अभेद ज्ञानका उपदेश

करने लगे और उस देशमें अपने ग्रन्थोंका प्रचार करने लगे। कुछ दिन तिस देशमें रहकर फिर श्रीशैल पर्वतपर गये और वहां पर वेदवाह्य मतोंका खण्डन करने लगे और अद्वैत मतका स्थापन करने लगे और बहुतसे वेद वाह्य मतवालोंको शंकरजीने अपना चेला वना लिया। कुछ तो संन्यासी चेले बनाये और बाकीके सब गृहस्थी चेले बनाये। एक दिन एक आदमी कपाली मतका ऊपरसे साधुका भेप वनाकर उनके पास आया परन्तु तिसके चित्तमें भरा हुआ था, मारनेके इरादेसे आयाथा, शंकरजीसे कहने लगा कि, मुझको भी अपने वनाये. हुए ग्रंथोंको पढाइये, शंकरजीने इस वार्ताको स्वीकार किया और तिसको पढाना प्रारंभ भी करदिया। जब कि दो चार दिन तिसको पढते व्यतीत होगये, तब बडी प्रसन्नतासे वह शंकरजीकी स्तुति करने लगा. और कहने लगा आपने संसारी लोगोंपर बडा उपकार किया है, क्यों कि आप उपकार करनेके लिये ही संसारमें उत्पन्न भये हैं, और आप सर्व गुणोंकरके संपन्न हैं, इदानीं कालमें कोई भी आपके समान नहीं है, फिर आपके समान इस जगतमें कोई दाता भी नहीं है, और न कोई उपकारही करनेवाला, क्योंकि धनादिकोंको दान करनेवाले तो सब है, परन्तु आत्माको दान करनेवाला कोई भी नहीं है, आत्माके दान करनेवाले आप ही हे, आपके पा स जो कोई याचक आता है वह, निरास कदापि नहीं जाता है, सो मैं भी आपके पास कुछ कामनाको लेकरके आयाहूँ वह कामना यह है, कि मैंने गिरिजाके सहित महादेवजीके दर्शनके लिये तप कियाहै परन्तु अभीतक हमको उनका दर्शन नहीं हुआ है, एक महात्माने हमसे कहा है, तुम किसी यति राजके शिरको लेकर हवन करो तब तुमको दर्शन होगा, और मनवांछित सिद्धि भी तुमको मिलैगी, सो इसी इच्छाको लेकर मैं आपके समीप आया हूँ, जो आपसे ही हमारी अभिलाषा पूरी होजायगी, आप ज्ञानी हैं, आपका देहादिकों अध्यास भी नहींहै आप अपना शिर हमको दान करके दीजिये। शंकरजीने उससे कहा जिस कालमें हमारे शिष्यगण हमारे पास न हों उसकालमें तुम आकर हमारे शिरको काट कर लेजाना।

शंकरजीकी वार्ताको सुनकर वह चलागया फिर एक दिन शंकरजी सन लगाकर एकान्त स्थानमें अपने ध्यानमें वैठे हुएथे उस कालमें कपाली

अवसरको पाकर मनमें कहने लगा आज मेरा मतलब पूरा होजायगा। ऐसा विचार कर तिसने भस्मको लगाया और रुद्राक्षको धारण कर और तीक्ष्ण बरछेको और खड्गको लेकर शंकरजीके शिर छेदन करनेको वह चला रास्तेमें पद्मपादाचार्य्य गुरुके परमभक्त बैठे थे, शंकरजीके पास जाते हुए उस कपालीको देखकर पद्मपादाचार्य्यको बडा क्रोध उत्पन्न हुआ और तुरन्त ही उन्होंने नरसिंहजीका आवाहन किया, तुरन्त ही नरसिंह भगवान् प्रगट होगये और कपालीको पकडकर भूमिपर गिराकर तिसके उदरको अपने नखोंसे नरसिंह भगवान्ने विदीर्ण करदिया और बडे भयानक शब्दको किया, तिस शब्दको सुनकर शंकरजी ध्यानसे उतर गये और सब शिष्य लोग शङ्करजीके पास पहुँचगये और पद्मपादाचार्य्यजीसे पूछने लगे, यह कैसा शब्द हुआ है? और यह कौन दुष्ट कपाली मारागया है, पद्मपादाचार्य्यने उनको कपालीका सब वृत्तान्त सुनाया तब शिष्योंने पद्मपादाचार्य्यजीसे पूछा आपने नरसिंहदेवको कैसे अपने वशीभूत किया है, पद्मपादाचार्य्यजी कहते लगे हे यतियो! हमको एक कालमें नरसिंह भगवान्के वश रनेका संकल्प हुआ, तब वनमें जाकर नरसिंह भगवान्को वशमें करनेके लिये हम तपको करने लगे। तपको करते २ जब कि, हमको बहुतसा काल व्यतीत होगया, तब एक किरातने आकर हमसे पूछा तुम किस कामनाके लिये तपको करते हो! सो हमसे कहो तब हमने उस किरातसे कहा—नरसिंह भगवान्के दर्शनके लिये हम तपको करते हैं और उनके दर्शनकी लालसा हमको बहुत कालसे लग रहीहै, इसीवास्ते हम महान् कष्टको सहन कररहे हैं, तब भी वह हमको दर्शन नहीं देते हैं, इसमें जो कारण है तिसको हम नहीं जानते हैं, जब कि, हमने किरातसे ऐसा कहा तब वह बनमें चलागया और थोडी देरके पीछे वह एक लतासे बांध कर नरसिंह भगवान्को अपने साथ लिये हुए हमारे पास पहुंच गया। नरसिंह भगवान्को देखकर हम उनकी स्तुतिको करने लगे फिर हमने कहा भगवन् आपके दर्शनकी लालसाको लेकर मुनिलोग हजारों वर्षोंतक आपका ध्यान लगाते रहते है,, तब भी आप उनके ध्यानमें नहीं आते हैं, और एक वनचरके तुम वशीभूत होरहे हो, तुम्हारी महिमा अपरम्पार है और इसमें क्या कारण है जोकि आप मुनियोंके वशीभूत नहीं होतेहो और एक वन-

श्वरके वशीभूत होरहेहो, सो मेरे प्रति कहिये। नरसिंह भगवान्ने कहा जिस प्रकार इस किरातने एकाग्रचित्त होकर मेरा ध्यान किया है. उस प्रकार मुनि-लोग चित्तको एकाग्र नहीं करसक्ते हैं, इसीसे मैं इस किरातके वशीभूत होरहा हूँ, ऐसा कहकर नरसिंह भगवान्ने हमको वरदिया। जिसकालमें तुम हमारा स्मरण करोगे उसी कालमें हम तुम्हारे पास प्रगट होजायँगे, ऐसा हमको वर देकर वह अन्तर्द्धान होगये, हे यतियो! इस प्रकार हमको नरसिंह भगवान्का दर्शन हुआ था और उसी नरसिंह भगवानका हमने आवाहन कियाथा, उसीने प्रगट होकर दुष्टकपालीके उदरको विदीर्ण किया। पद्मपादाचार्य्यकी वार्ताको सुनकर शंकरजीके शिष्यगण सब बडे प्रसन्न हुए और शंकराचार्य्यजी भी प्रसन्न हुए।

अब वहाँसे शिष्योंके सहित शंकरजी चल दिये और तीर्थोंमें पर्यटन करते २ समुद्रके किनारे पर जाय पहुंचे जहाँपर कि गोकर्ण महादेवजीका मन्दिर था, वहाँपर शिष्योंके सहित शंकरजीने तीन दिनतक निवास किया; उस मन्दिरके समीप एक ग्राम था, उस ग्राममें भास्करनाम करके एक ब्राह्मण रहता था उस ब्राह्मणकी कर्मकाण्डमें बडी निष्ठा थी और कर्मकाण्डमें बडा निपुण भी था और धन ऐश्वर्यभी उसके पास बहुतसा था, तिसके गृहमें एकही पुत्र था, परन्तु वह बालक बाल्यावस्थासे ही पागलकी तरह रहता था, तिसका पिता नित्यही अपने मनमें विचार करता रहता था कि इस बालकके कोई पिशाच लगा है, इसीसे यह मतवालासा रहता है, न तो यह पढता है, न लिखता है और न कोई कामको ही सीखता है और न यह ब्राह्मणपनेके ही कर्मोंको करता है, सो इसका कोई पूर्वजन्मका कर्मही ऐसा है, भास्करने पुत्रके रोग दूर करनेके लिये बहुतसे उपाय किये परन्तु वह अच्छा न हुआ भास्करको शंकरजीके आनेका हाल मालूम हुआ कि एक संन्यासी बडे महात्मा इस नगरके बाहर आकरके ठहरेहैं और उनके साथ बहुतसे चेले भी हैं और पुस्तकोंके भी भारोंके भार हैं, क्योंकि वह एक अद्वितीय पण्डितहैं ऐसा सुनकर भास्करको पूरा भरोसा होगया कि हमारा लडका उनके पास जानेसे अवश्य ही अच्छा होजायगा, वह अपने लडकेको साथ लेकर शंकरजीके समीप आकर प्रणाम करके बैठगया और अपने लडकेका सब वृत्तांत तिसने शंकर-

जीसे कह सुनाया और शंकरजीके चरणोंपर अपने लडकेको तिसने डालदिया और वहुत देरतक वह लडका शंकरजीके चरणोंपर पडा रहा। शंकरजीने अपने हाथसे तिस लडकेको उठाकर पूछा तुम कौनहो? जडके तुल्य शरीरको धारण किये हो, जडवत् तुम्हारी सब चेष्टा है,शंकरजीके वाक्यको सुनकर वह बालक बोला हे गुरो! न मैं मनुष्य हूँ, न मैं देवता हूँ, न यक्ष हूँ, न मैं गंधर्व हूँ, न मैं ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय हूँ, न वैश्य हूं, न शूद्र हूँ और न मैं ब्रह्मचारी हूँ, न गृहस्थ हूं, न वानप्रस्थ हूँ, न संन्यासी हूं, किन्तु मैं चैतन्यस्वरूप ज्ञानस्वरूपहूँ, फिर मैं जडभी नहीं हूँ, किन्तु जितना कि जड जगत्है, सब मेरेमें ही कल्पित है, षट उर्मी तथा षट भाव विकार भी मेरेमें ही सब कल्पित है और मेरा स्वरूप विकारोंसे रहित निर्विकार है। और सम्पूर्ण जड चैतन्यवर्गका प्रकाश करनेवाला भी मैं ही हूँ। बालकके वचनोंको श्रवण करके शंकरजीका मन बडा प्रसन्न हुआ और अतिदयालुतासे अपना हाथ तिस बालकके मस्तक पर शंकरजीने रक्खा और तिसके पितासे कहा यह बालक आपके साथ वसने लायक नहीं है, क्योंकि तुम्हारा कुछ भी प्रयोजन इस बालकसे सिद्ध होनेवाला नहीं है, पूर्वले जन्मके अभ्यासके वशसे सब कुछ सार असारको यह बालक जानता है जानबूझ करके यह जडवत् बना है और बोलता नहीं है, क्योंकि संसारीलोगोंमें और संसारके भोगोंमें इसकी रुचि नहीं है, इसी वास्ते इसने अपने को पागलसा बना रक्खा है और शरीरमें ममताका भी इसने त्याग करदिया है और सदैवकाल इसकी अंतर आत्मामें ही दृष्टि रहती है, यह बालक हमारे ही साथ रहनेलायक है।

आप इस बालकको हमको देदीजिये। उस बालकके पिताने बालकको शंकरजीको देदिया और शंकरजीको प्रणाम करके अपने घरकी तरफ चला गया। शंकरजी भी दूसरे दिन वहाँसे चलदिये और थोडे ही दिनोंमे शंकरजी शृंगी पर्वतपर पहुँचगये, पूर्वयुगमें शृंगीऋषिने उस पर्वतपर तप किया था। इसीवास्ते उस पर्वतका नाम शृंगीपर्वत रक्खा गया है, उसी स्थानमें शंकरजी कुछ कालतक रहगये और शारदामठको भी बनवाया और उसी स्थानपर एक ब्राह्मणके लडकेको शंकरजीने संन्यास देकर अपना शिष्य बनाया और उसक

नाम तोटक रक्खा। तोटककी गुरूपर बडी श्रद्धा थी और तनमनसे वह शंकरजीकी सेवा करता था। प्रातःकालमें प्रथम आप स्नान करके फिर जलभरकर शंकरजीको स्नान कराता था और भी सर्व प्रकारकी सेवा करता था। शंकरजी भी उसपर बडे प्रसन्न रहते थे एक दिन तोटक नदीपर जल लेनेको गया था, और इधर पीछे पाठ पढानेका समय आपहुँचा, सब शिष्यलोग अपनी अपनी पोथीको खोलकर शंकरजीके सम्मुख बैठगये। तब शंकरजीने कहा तोटक आजायगा तब पाठका प्रारम्भ होगा विना उसके आनेसे नहीं होगा, तब पद्मपादने कहा महाराज! वह तो मूर्ख है। उसको तो अक्षरका भी बोध नहीं है, यह पाठ तो महान कठोर है जिसको अक्षरका भी बोध नहीं है, वह इस पाठका अधिकारी कब होसक्ता है, पद्मपादकी वार्ताको सुनकर शंकरजीने तोटकपर ऐसी कृपादृष्टि की जो उसके हृदयमें सर्व विद्या स्फुरण होगई और जब कि तोटक नदीसे चला तब रास्तामें वह तोटक छन्दका उच्चारण करने लगा और आते आतेही वेदान्तका तोटक ग्रन्थ तिसने बनादिया और आकर गुरुजीको सुनादिया। तिसके छन्दोंको सुनकर सब शिष्योंका अभिमान दूर होगया। उसीकालमें उसका नाम तोटकाचार्य्य रक्खा गया।

फिर थोडे दिनके पीछे एक दिन सुरेश्वराचार्य्यजीने शंकरजीसे प्रार्थना की कि महाराज! मेरेको यदि आप आज्ञा देवैं तो मैं शारीरकभाष्यपर वृत्ति बनाऊं. शंकरजीने कहा हमारे भाष्यका आशय बडा गंभीर है, उसके ऊपर आप वार्तिक बनावो फिर सुरेश्वराचार्य्यने कहा—महाराज भाष्यका तात्पर्य बडा गंभीर है, तिसपर भी हमको वृत्ति बनानेकी आज्ञा दीजिये, शंकरजीने तिसको वृत्तिबनानेके लिये आज्ञा देदी। सुरेश्वराचार्य्य वृत्ति बनानेकी आज्ञा लेकर जिस कालमें अपने आसन पर आये और वृत्ति बनानेका विचार करनेलगे इस वार्ताको सुनकर चित्सुखाचार्य्यके मनमें मत्सर खडा होगया और पद्मपादाचार्य्यसे आदि लेकर जो कि, शंकरजीके शिष्य थे, उनके साथ मिलकर सलाह की कि, सुरेश्वराचार्य्य भाष्यपर वृत्ति न बनानेपावै वृत्ति बनानेकी आज्ञा हमको मिलै, ऐसा विचार करके वह सब संन्यासियोंको साथ लेकर शंकरजीसे कहनेलगा कि, सुरेश्वराचार्य्य प्रथम बडा कर्मकाण्डी था और अनीश्वरवादी भी

था और कर्मको ही यह प्रधान मानता था, कदाचित् ऐसा भी करदे जो जैमिनि-पक्षको लेकर कुछ औरका औरही लिखदे तो ठीक न होगा, क्योंकि जबसे यह जन्मे हैं, तबसे कर्मोंको ही यह करते रहे हैं, और इनके हृदयमें उनके ही संस्कार भी धसे हैं, उन संस्कारोंका निकलना भी बडा कठिन है, इस लिये हमको इनके वृत्ति बनानेमें बडा सन्देह है फिर इन्होंने संन्यासको वैराग्य पूर्वक धारण भी नहीं किया है । किन्तु हारजानेपर लिया है, इनको वृत्ति बनानेकी आज्ञा मत दीजिये किसी औरको दीजिये, या पद्मपादाचार्य्यजीको वृत्ति बनानेकी आज्ञा दीजिये या आनन्दगिरीको दीजिये । इनके विना और चाहे जिसको दीजिये परन्तु इनको मत दीजिये। तिसी कालमें वहाँपर सनन्दजी भी आकर प्राप्त होगये, उन्होंने कहा हस्तामलकको वृत्ति बनानेकी आज्ञा दीजिये, क्योंकि यह वृत्ति बनानेमें बडे निपुण हैं, शंकरजीने कहा यह तो बाल्यावस्थासे ही अक्षरोंको भी नहीं पहिंचान सक्ता है, तब फिर यह वृत्ति कैसे बनावैगा । सनन्दने कहा बिना ही साधनोंके जैसे इसको बाल्यावस्थामें आत्मज्ञान होगया है, तैसे विना ही पढे यह वृत्तिको भी वनालेगा, शंकरजीने कहा जन्मान्तरके यह सिद्ध है, इनके पूर्वजन्मकी कथा इस तरह है, यमुनाजीके किनारेपर संसारमें उदासीन होकर कुटी वनाकर यह पूर्वजन्ममें तप करते थे, एक दिन एक स्त्री अपने छोटेसे बालकको लेकर वहाँपर स्नान करनेको आई किनारे पर बालकको बिठाकर कहा आप जरा इस बालककी तरफ देखिये मैं स्नान करके इसको लेलूंगी। जब कि वह स्नान करनेको यमुनामें गई, तब बालक खेलता २ यमुनाके बीचमें गिरपडा और गिरते ही मरगया, मरे बालकको देखकर वह स्त्री बडा विलाप करने लगी, तब कुटीवाले सिद्धको बडी दया उपजी और तिसी कालमें अपने शरीरको त्याग कर वह तिस बालकके शरीरमें प्रवेश करगये ।

बालक जीता जागता होकर फिर खेलने लगा । तिस बालकको जीते देखकर तिसके माता पिता बडे हर्षको प्राप्त हुए वही यह हस्तामलक है । यदि यह सब कुछ जानतेभी हैं, तब भी अपने स्वरूपमें मग्न होनेसे इनका मन वृत्ति बनानेमें नहीं लगेगा :और सुरेश्वराचार्य्यका मन वृत्ति बनानेमें लगेगा, क्योंकि एक तो इसने सम्पूर्ण शास्त्रोंका अवलोकन किया है, दूसरा बडे भारी

परिश्रमसे यह हमको मिलाभी है, फिर शिष्योंने कहा महाराज सनन्दनजी बड निपुण और चतुर भी हैं, इनको वृत्ति बनानेकी आज्ञा दीजिये या भाष्यपर वार्त्तिक बनानेकी आज्ञा दीजिये, शंकरजीने कहा इसको भाष्यपर विवरण बनानेकी आज्ञा देते हैं और मंडनमिश्रको वार्त्तिक बनानेकी आज्ञा हम देते हैं और मण्डनमिश्रसे कहा तुम स्वतंत्र प्रबन्ध रचनाको करो और एक ग्रन्थको बनाकर हमको दिखलावो जो कि, हम शिष्योंके सन्देहको दूर करैं। शंकरजीकी आज्ञाको पाकर सुरेश्वराचार्य्यने "नैष्कर्मसिद्धि" नामक ग्रंथको बनाकर शंकरजीको दिखाया। शंकरजी और उनके सब शिष्य तिस ग्रंथको देखकर बडे हर्षको प्राप्त हुए और सबके मनमें विश्वास होगया कि, इसके समान कोई भी अद्वैतवादी और ज्ञानी नहीं है। जिस कारणसे तिस ग्रन्थको पढकर और धारण करके पुरुष कर्मबन्धनसे रहित होजाता है, इसी कारणसे तिस ग्रन्थका नाम "निष्कर्मसिद्धि" सुरेश्वराचार्यने रखा। सुरेश्वराजार्यका ग्रंथ भी धीरे २ प्रचलित होगया और सुरेश्वराचार्य्यने वृत्ति बनानेवालेको शाप भी दिया। सुरेश्वराचार्यने कहा जिस वास्ते महारे वृत्ति बनानेमें तुमने विघ्न किया है। इसी वास्ते संसारमें तुम्हारी वृत्ति बनाई हुई नहीं रहेगी, फिर ऐसाही हुआ, एक दिन शंकरजीने सुरेश्वराचार्यसे कहा आपलोग उपकारके लिये हमारी आज्ञाको लेकर तैत्तिरीय उपनिषद पर वार्त्तिकको बनाइये। अब तुम्हारे ग्रंथ बनानेमें कोई भी विघ्न नहीं होगा, किन्तु निर्विघ्न तुम्हारा ग्रंथ समाप्त होगा और जब तक संसारमें तुम्हारा ग्रंथ रहैगा तबतक तुम्हारी कीर्ति भी बनी रहेगी। शंकरजीकी आज्ञाको पाकर सुरेश्वराचार्यने शीघ्रही इन दोनों ग्रंथोंको तैयार कर दिया और शंकरजीके सन्मुख लाकर रख दिया। शंकरजी उनके ग्रंथोंको देखकर बडे प्रसन्न हुए और वर भी दिया तुम्हारी कीर्त्ति बनी रहेगी। फिर शंकरजीने आनन्दगिरी आदिक अपने शिष्योंको भी ग्रन्थ बनानेकी आज्ञा दी कि तुमभी अपने २ ग्रन्थोंकी रचना करो। उन्होंने भी अपने २ ग्रंथोंको रचकर शंकरजीको दिखाया, उनके ग्रंथोंको भी देखकर शंकरजी बडे प्रसन्न हुए।

फिर एक दिन पद्मपादाचार्यने शंकरजीसे कहा, महाराज पृथ्वी पर अनेक तीर्थ है, उनमें जाकर स्नान करनेकी मेरे मनमें इच्छा है, सो आप यदि प्रसन्न होकर मेरेको आज्ञा दें तो मैं जाकर उन तीर्थोंमें स्नान कर आऊँ । शङ्करजीने कहा—सर्व तीर्थरूप गुरु हैं, गुरुके समीप रहनाही तीर्थ पर रहना और गुरुके वचनोंको जो श्रवण करके धारण करना है, वही सर्व तीर्थोंका स्नान है सो आप मेरे समीप रहकर नित्यही सब तीर्थोंके फलको लेते हैं । आपको तीर्थ यात्रा करनेकी क्या जरूरत है और तीर्थ यात्रा करनेमें अनेक प्रकारके क्लेश भी सहने पडते है । वक्तपर भोजन भी नहीं मिलता है और चलनेमें परिश्रम भी बहुत सा होता है, अति परिश्रम होनेसे अनेक प्रकारके रोगादिक भी शरीरमें उत्पन्न होजाते हैं, शूद्राचार होजाता है, कभी भी क्षणमात्र आत्माकार वृत्ति नहीं होती है, किन्तु तीर्थयात्रामें अनात्माकार ही वृत्ति बनी रहती है फिर विचारकी गन्धमात्र भी नहीं रहती है, इसी वास्ते तीर्थयात्रा अधम पुरुषोंके लिये लिखी है, मुमुक्षु और ज्ञानियोंके लिये तीर्थोंका भ्रमण करना नहीं लिखा है जब कि, शंकरजीने पद्मपादको इस प्रकारका उपदेश किया तब पद्मपादने कहा—भगवन् ! मेरा मन बिना देखे नहीं मानता है, आप मेरेको आज्ञा दीजिये कि मैं तीर्थाटनके सुख दुःखको अनुभव करके फिर आपके चरणोंमें आकर हाजिर होजाऊँ ।

यदि तीर्थयात्रामें अनेक प्रकारके दुःख सहने पडते है तथापि अनेक देशोंका तो दर्शन भी होजाता है । और क्लेश उठानेसे बिना पुण्यकी प्राप्तिभी नहीं होती है, फिर दुःख उठाना भी शरीरकाही धर्म है, हमारी इसमें कोई हानि भी नहीं है, शंकरजीने पद्मपादके हठको देखकर तिसको तीर्थ यात्रा करनेकी आज्ञा देदी । शंकरजीकी आज्ञाको लेकर पद्मपादजी तीर्थयात्राको चलपडे और शंकरजी तिसी पर्वतपर रहगये, जब कि, कुछ काल रहते व्यतीत होगया, तब एक दिन शंकरजीने ध्यानावस्थित होकर जान लिया कि माताके मरणका समय अब निकट आ पहुंचा है, अब माताके समीप चलना चाहिये और अपने करारको पूरा करना चाहिये ।

शंकरजी वहाँसे चलपडे और थोडेही कालमें माताके समीप पहुंच गये । आगे

शंकरजीकी माता शंकरजीकी बाट देख रही थी, शंकरजीको देखकर माता प्रसन्न हुई और शंकरजीने कहा माता अब तुम किसी प्रकारकी भी चिन्ता मत करो और अपने संपूर्ण दुःखोंको अब भुला दीजिये और जो सेवा हो सो हमारे प्रति कहिये तब माताने कहा हे पुत्र! अब मेरा अन्तका समय आपहुंचाहै, अब आप मेरेको ऐसा उपदेश कीजिये जिस उपदेशको श्रवण करके मेरा जन्म मरण-रूपी संसार छूटजाय माताके वचनको श्रवण करके शंकरजीने माताके प्रति अद्वैत आत्माका उपदेश किया तिस कालमें शंकरजीने माताके प्रति उपदेश किया है, उसी ग्रन्थका नाम "उपदेश साहस्री" है, शंकरजीके उपदेशके समाप्त होनेपर मातानेभी शरीरका त्याग करदिया।

शंकरजीने माताके शरीरका दाह अपने हाथसे किया और भी मृतकका सब कर्म करदिया। क्योंकि शंकरजीका माताके साथ इस वार्ताका करार था शंकरजीको मृतक क्रिया करते देखकर उनके सम्बन्धियोंने शंकरजीकी निन्दा करना प्रारम्भ कर दी कि संन्यासी होकर उन्होंने दाह कर्म किया है, उनको दाहक्रियाका अधिकार नहीं था।

उनकी निन्दाके शब्द शंकरजीके कानतक भी पहुँचे, तब शंकरजीने उनको शाप दिया कि, तुम सब वेदाद्यमतवाले होवोगे और तुम्हारे गृहोंमें चिता बना करैगी। यतीलोग तुम्हारे घरोंमें भिक्षा नहीं करैंगे। शंकरजीने जो अपनी मातासे प्रतिज्ञा की थी उसको पूरा करके शंकरजी वहाँसे चल दिये और इधर पद्मपादाचार्यजी शिष्योंके सहित यात्रा करते हुए अपने मातुलके ग्राममें आनिकले। मातुलने क्षेमकुशल पूछ कर आदर सत्कारसे सब भिक्षुओंको भिक्षा कराई और जब कि भिक्षा करके सब भिक्षुक आसनोंपर बैठे तब तिसने पूछा आप लोगोंके पास कौन विषयके सब पुस्तकं है, तब पद्मपादने कहा सूत्रभाष्य की यह टीका है, उसने कहा, हमको भी सुनावो। पद्मपादजी मातुलको सुनानेलगे तिसको सुन करके ऊपरसे तो तिसने प्रसन्नता दिखाई परन्तु भीतरसे वह बडा दुःखी हुआ, क्योंकि वह बडाभारी कर्मकाण्डी था और तिसके मतका भी उस ग्रन्थमें खण्डन था। इसलिये वह अपने मनमें बडा दुःखी हुआ। यद्यपि वह मनमें दुःखी भी हुआ तथापि ऊपरसे उसने तिस ग्रन्थकी बडी श्लाघा की। तब

पद्मपादाचार्य्यजीने अपने मनमें विचार किया कि हमें रामेश्वरको जाना है और ग्रन्थोंका बोझ साथ लेजाना ठीक नहींहै, फिर भी इसी रास्तेसे आना होगा इसलिये ये सब ग्रन्थ इसीके घरमें धरदेने चाहियें। जब फिर लौटकर इसी रास्तेसे आवेंगे तब अपने पुस्तकोंको यहाँसे अपने साथ लेते जायँगे। ऐसा विचार करके पद्मपादने अपने सब पुस्तक उसीके मकानमें धरदिये और आप रामेश्वरको चलेगये। पीछे तिसके मातुलके मनमें दुष्टता उत्पन्न हुई उसने अपने मकानको एक दिन आग लगा दी उसीमें वह सब पुस्तक जलगये, रामेश्वरसे लौटकर पद्मपाद वहाँपर आये तब उनको मालूम हुआ कि पुस्तकें सब मामाने जलादिये हैं। तब थोडी देरतक अपने मनमें बडे दुःखी हुए फिर विचार करके मनमें कहने लगे कि पुस्तक जलगये हैं,हमारी बुद्धि तो नहीं जली है। जब कि हमारी बुद्धि विद्यमान है, तब रचना करलेवेंगे। पुस्तकोंके लिये शोक करना व्यर्थ है, ऐसा विचार करके फिरसे पुस्तकोंके बनानेका विचार किया इतनेमें उनके साथके यतिलोग और भी वहाँपर पहुंच गये उनसे मिलकर पद्मपादजीको बडा हर्ष हुआ फिर उसी स्थानमें एक ब्राह्मण उनको मिला, उस ब्राह्मणसे गुरूजीके क्षेमकुशलके हालको सुनकर सबको बडा आनन्द हुआ और सबोंने मिलकर परस्पर सलाह की कि, गुरुजीका वियोग बहुत दिनोंसे होरहा है अब हमको उचित है कि गुरुजीके पास जाकर उनका दर्शन करके वियोगके दुःखको दूर करें।

ऐसा विचार करके सब यतियोंने वहाँसे केरल देशको चल दिया थोडे ही दिनोंमें सबके सब यती लोग शङ्करजीके पास पहुंच गये और गुरुजीसे मिलकर बडे हर्षको प्राप्त हुए, गुरुजीभी उनको मिलकर बडे आनन्दको प्राप्त हुए फिर परस्पर क्षेमकुशलकी वार्ताको पूछकर पद्मपादजीने शंकरजीसे कहा भगवन् जब कि, मैं श्रीरंगजीका दर्शन करके वहाँसे फिर चला तब रास्तेमें मेरे मातुलका घर था, वहाँपर मैं दो तीन दिनतक ठहरा, क्योंकि हमारे मातुलने हमारी और हमारे साथके यतियोंकी बडी सेवा की और हमसे पूछा ये पुस्तक आपके पास कौन हैं? तब मैंने अपनी बनाई हुई टीका तिनको सुनाई,तिसको श्रवण करके मनके भीतर तो वह बडा दुःखी हुवा परन्तु ऊपरसे उसने हर्ष प्रगट किया

वह चक्रांकित था। इस लिये मनमें गुप्तकपटको रक्खा, उसके कपटको हमने नहीं जाना और उसीके घरमें पुस्तकोंको धरकर हम रामेश्वरको चले गये, हमारे चलेजानेके पीछे तिसने अपने घरको आग लगादी, उसीमें हमारे सब पुस्तकोंको उसने जलादिया। फिर उसने भोजनमें ऐसी वस्तु मिला दी जिसके खानेसे हमारी बुद्धि मलीन होगई है अब जो हम ग्रन्थके लिखनेका प्रारम्भ करते हैं, तब सूक्ष्म बातें हमको फुरती नहीं हैं, भगवन्! कौनसे अपराध करके हमारी ऐसी दशा होगई है, सो हमसे कहिये।

शङ्करजीने कहा—सुरेश्वराचार्य्यजीके साथ आप लोगोंने ईर्षा की थी। उसने शाप दिया था, कि तुम्हारी बनाई हुई वृत्ति प्रवृत्त नहीं होगी, सो तिसीके शापका यह फल है, अब तुम अपने मनमें खेद मत करो, पञ्चपदीको हम कहते हैं, तिसीको तुम लिखलेवो, शंकरजीने जो अपने मनसे पंचपदी ग्रन्थको बनाया था, सो पद्मपादजीको समग्र लिखवादिया तिसको पढकर पद्मपादजीको बडा हर्ष हुआ उसी स्थानमें रहते जब शंकरजीको कुछ दिन बीते तब तिस देशमें शंकरजीका यश फैल गया और उनकी विद्वत्ताकी कीर्तिको सुन केरलदेशका राजा भी वहाँपर शंकरजीके दर्शनको आया और आकर शंकरजीके चरणोंपर मस्तकको धरकर कहा—भगवन्! राजशिरोमणि मेरा नाम है, आपके दर्शनकी अभिलाषा थी, सो आज पूरी होगई, वह राजा भी बडा कवि था, उसने कई एक ग्रन्थ नाटकके बनाये थे, शंकरजीने राजासे पूछा कि, आपके बनाये हुए ग्रन्थ संसारमें प्रसिद्ध हुए हैं, या नहीं हुए। तब राजाने कहा भगवन्! मैंने तीन ग्रन्थ नाटकके बनाये थे, सो आग लगनेसे वह तीनों ग्रन्थ जलगये, राजाकी वार्ताको सुनकर शंकरजीने उनतीनों नाटकोंको जबानी पढकर राजाको सुनादिया। नाटकोंको सुनके राजा बडी विस्मयको प्राप्त हुआ और शंकरजीको राजाने जान लिया कि, यह योगिराज हैं, सो योगबलसे इन्होंने हमारे ग्रन्थोंको जाना है, फिर राजाने प्रार्थना की भगवन्! हमको तीनों ग्रन्थोंको लिखवा दीजिये। शंकरजीने तीनो नाटकोंको राजाके प्रति लिखवादिया, फिर राजाने शंकरजीसे कहा—भगवन्! हमारे प्रति कुछ सेवाको फरमाइये शंकरजीने कहा जिन विप्रोंको

हमारा शाप हुआहै, उनका कर्ममें अधिकार नहीं रहा है, तुम उनसे वैसे ही वर्ताव करना, क्योंकि वह शाप करके शापित हुए हैं और : इस पञ्चपदी ग्रन्थको तुम लिखवाकर अपने पास रक्खो उसके विचार करनेसे तुम्हारे चित्तकी शुद्धि और शान्ति होगी । राजाने शंकरजीकी आज्ञाके अनुसार पंच- पदी ग्रन्थको लिखवा लिया, शंकरजीकी आज्ञाको लेकर राजा अपने गृहको गया, वहाँसे फिर शंकरजी सुधन्वा राजाके राज्यमें गये, शंकरजीके आग- मनको जानकर सुधन्वा राजा शंकरजीके पास आया और शंकरजीका राजाने बडा सत्कार किया, कुछ दिन वहाँपर रहकर पश्चात् सुधन्वाराजाको भी साथ लेकर शिष्योंके सहित फिर शंकरजी दिग्विजय करनेको वहाँसे चलपडे ।

वहाँसे चलकर थोडे ही कालमें मध्यार्जुन धाममें पहुँच गये । वहाँपर शंकरजी कुछ कालतक रह गये और शिवजीसे शंकरजीने ऐसी प्रार्थना की कि, द्वैत मत सत्य है या अद्वैत मत सत्य है ? जो दोनोंमें सत्य हो, उसीको आप प्रगट होकर मेरे प्रति कहिये । महादेवजीने प्रगट होकर कहा अद्वैत मत ही सत्य है, जब कि वहांके सब लोगोंके सम्मुख महादेवजीने अद्वैत मतको ही सत्य कहा तब सब लोगोंने अद्वैत मतको ही स्वीकार करलिया । अद्वैत मतका वहां पर प्रचार करके फिर शंकरजी तुलाभवानी नाम करके जो स्थान है वहाँको गये । वहाँ पर सब लोग शक्तिके उपासक थे शंकरजीके आगमनको सुनकर वहांके सब शाक्त लोग शंकरजीके पास आये और शक्तिकी उपासनाका मंडन करनेलगे और शंकरजीसे कहने लगे आप भी इसी हमारे मतको स्वीकार करें, क्योंकि इस मतमें भोग मोक्ष दोनों करामलकवत् हाथपर रखे हैं और आपके मतमें भोगकी तो गंधमात्र भी नहीं है और तुम्हारे मोक्षमें भी कुछ रस नहीं है, हमारे मतमें प्रथम तो पाँच मकारोंका सेवन है ।

मद्य १ मांस २ मछली ३ मुद्रा ४ मैथुन ५ ये पाँच मकारही परम उत्तम भोगके साधन हैं और एक दूसरेका परस्पर सम्बन्ध भी । जो लोग मद्य- पान और मांसका भक्षण न करके केवल स्त्रीभोग करते हैं, वह पशु हैं । क्योंकि उनको पूरा पूरा मैथुनका आनन्द नहीं आता है, मुद्रा विना तो शास्त्रोंके सभी काम व्यर्थ होतेहैं । मांस विना सब रसोई घास है, ऐसा जगत्में लोग कहते भी

हैं । जिसको इस लोकके भोगोंके भोगनेकी कामना है, उसको शक्ति मत ही स्वीकार करना उचित है । मोक्ष होनेपर भी हम लोगोंको शक्तिके लोककी प्राप्ति होती है, वहाँपर भी फिर सदैव हम उत्तम उत्तम भोगोंकोही भोगते रहेंगे । सम्पूर्ण जगत्का आदिकारण वह शक्ति ही है प्रथम वह निराकार रूपसे अपनी महिमामें स्थित थी फिर भक्तोंके प्रेमके वशीभूत होकर वह शक्ति साकार होगई, उसकी उपासनासे ही पुरुषको मोक्ष मिलता है, इसीवास्ते शक्तिके उपासक जो कौल हैं, सो मद्यको पान करके संसारमें जीवनमुक्त होकर विचरते हैं । सो आप भी तिसी शाक्त मतको स्वीकार करें, क्योंकि बिना मतके पुरुषका कल्याण कदापि नहीं होताहै और इस लोकका सुख भी पुरुषको नहीं मिलसक्ता है ।

शंकरजीने उन शाक्तोंसे पूछा वह शक्ति कौन है ? अर्थात् शक्ति तुम्हारी जड है । या चेतन है । यदि कहो जड है, तव जडकी उपासना करनी निष्फल है, क्योंकि जो आपही जड है तो ज्ञान इच्छा आदिकोंसे रहित है, वह घटवत् तुमको क्या फल देसक्ती है । यदि कहो वह चेतनको आश्रयण करके चेतनवत् होकर फलको देती है तब जिस चेतनका आश्रयण करके शक्ति तुमको फल देती है, उस चेतनकी उपासनाको त्याग करके जडकी उपासनाते फलकी इच्छा करना इससे बढकर और क्या अज्ञान होगा ? यदि कहो वह शक्ति चेतन है, तब हम पूछते हैं, शक्ति जो होती है सो किसी आश्रयमें रहती है जैसे दाहशक्ति अग्निमें रहती है तैसे तुम्हारी शक्ति भी चेतनमें रहती होगी, सो शक्ति चेतनसे भिन्न है, या अभिन्न है, अथवा भिन्नाऽभिन्न है, यदि कहो भिन्न है, तव वह चेतनरूप नहीं होसक्ती है, क्योंकि चेतनकी शक्ति चेतनसे भिन्न कदापि नहीं होसक्ती है, और अभिन्न भी नहीं हो सक्ती है, यदि अभिन्न मानोगे तब शक्तिमत ऐसा व्यवहार नहीं होगा और भिन्न भिन्न भी नहीं हो सक्ती । चेतनकी शक्ति चेतनसे भिन्न भी हो, और अभिन्न भी हो, ऐसा कैसे होसक्ता है, इसमें कोई दृष्टांत भी नहीं मिलता है और चेतनरूप भी नहीं होसक्ती है । क्योंकि तुमने शक्तिका एक लोक माना है, तिसमें मूर्तिमान् शक्तिको बैठा हुआ तुमने कल्पना किया है, चेतन निरवयव निराकार सर्वव्यापक है, व्यापकका

एक स्थानमें बैठना नहीं बनता है। इसलिये तुम्हारी कल्पना सब मिथ्या है, फिर जिस प्रकार तुम शक्ति और उसकी उपासनाको कल्पना करते हो, वह भी सब वेदविरुद्ध है, वेदमें और शास्त्रोंमें कहीं भी इस प्रकारकी उपासना करना नहीं लिखा है मद्यपान करनेवालेको महापातकी लिखा है, वेद विरुद्ध आचरण करनेवालेको नरकगामी कहा है। तुम्हारा आचरण सब वेद विरुद्ध है, तुम मोक्षके अधिकारी कदापि नहीं हो सक्ते हो. क्योंकि मोक्षके साधनोंके तुम समीप नहीं जाते हो, और शक्ति उपासनासे मोक्ष वेदमें कहीं भी नहीं लिखा है किन्तु ज्ञानसे ही मोक्ष लिखा है। "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" ज्ञान बिना मुक्ति नहीं होती है, ऐसा श्रुतिने नियम कर दिया है। और वेदमें चेतन ब्रह्महीकी उपासना लिखी है जडशक्तिकी उपासना कहीं नहीं लिखी है। और ब्रह्मसे भिन्न सारे जगत्को कल्पित और मिथ्या कहा है। यदि शक्तिको भी तुम ब्रह्मसे भिन्न मानोगे तब वह भी मिथ्या और कल्पित साबित होगी, सो दिखाते हैं। "ब्रह्म-भिन्नम्, सर्वं मिथ्या, ब्रह्मभिन्नत्वात्, शुक्तिरजतवत्" ब्रह्मसे भिन्न संपूर्ण प्रपंच मिथ्या हैं। ब्रह्मसे भिन्न होनेसे शुक्ति रजत्की तरह। यह अनुमान शक्तिके मिथ्यात्वमें प्रमाण है। ब्रह्मसे भिन्न शक्ति कोई वस्तु नहीं है और कल्पित वस्तुकी उपासनासे फल भी कल्पित ही होता है। सच्चा फल कदापि नहीं होता है, जैसे शाक्तोंने सिन्दूरादिकोंके तिलकको कल्पना कर रक्खा है। तैसेही इनकी शक्ति भी कल्पितही सिद्ध होती है।

बस इसी जगहमें यह दृष्टान्त भी घटता है। "यादृशी शीतला देवी तादृशी वाहनं खरः" जैसे लोगोंने शीतलाको कुरूप कल्पना किया है, वैसा ही कुरूप उसका वाहन गधा भी कल्पना किया है। जैसी इनकी शक्ति है वैसा इनका मोक्ष है शंकरजी शाक्तकोंसे कहते हैं कि तुम अपने देवताको मद्य मांसकी बली देते हो, सो केवल देवताको निमित्तमात्र है तुमने अपने खानेका एक उपाय बना लिया है मांस मद्यको राक्षस लोग भक्षण करते है, देवता भक्षण नहीं करते हैं। वेदमें लिखा है, देवता न खाते हैं, न पीते है, किंतु अमृतको देखकर तृप्त होते है। और जो तुम देवीकी मूर्तियोंके आगे जीवोंकी हिंसा करते हो, सो राक्षसोंका कर्म है, मनुष्योंका नहीं है। ऐसे २ निन्दित कर्मोंको करके

तुम अपना कल्याण चाहते हो, इससे बढकर और क्या मूर्खता होगी, तुम महाघोर अन्धतम मार्गमें पडेहो, जबतक तुम इस वेदनिन्दित मतका त्याग नहीं करोगे, तबतक तुम्हारा मोक्ष कदापि नहीं होगा। और जीव ईश्वरके अभेदज्ञानका नाम ही आत्मज्ञान है, वह मोक्षका हेतु है और भेद ज्ञान बन्धका हेतु है। इसी वार्ताको श्रुति भी कहती है। "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" मृत्युसे भी मृत्युको प्राप्त होता है, जो इस ब्रह्ममें नानाकी नाई देखता है, अर्थात् भेदभावना करके देखता है, और निराकार चेतनका उपाधिके विना भेद बनता भी नहीं है, साकारका ही भेद होता है, मोक्षावस्थामें उपाधी जीव नष्ट होजाता है, इसवास्ते वह चेतन व्यापकमें मिलजाताहै और जितना जगत् है, वह सब अज्ञान करके कल्पना किया हुआ है इसवास्ते मिथ्याहै, कल्पित पदार्थका अधिष्ठान जो चेतन है वही सत्य है, उसी अधिष्ठान चेतनका नाम ही ब्रह्म है, वही जीव अपना आत्मा है "अयमात्मा ब्रह्म" यह जो तुम्हारा आत्मा है, सोई ब्रह्म है, और जो तुमने बाहर शाक्तपनेके चिह्नोंको धारण किया है, ये सब कल्याणके हेतु नहीं हैं, किन्तु बन्धनके हेतु हैं, क्योंकि यह सब पाखण्डके हेतु हैं, शंकरजी कहते हैं हे शाक्तो! यदि तुमको कल्याणकी इच्छा हो तब मेरे वचनोंमें विश्वास करके इस पाखण्ड मतको त्यागकर अद्वैत मतका तुम आश्रयण करो, शंकरजीके वचन उन शाक्तोंके हृदयमें समागये और शीघ्रही उन्होंने शाक्तमतका त्याग करके अद्वैत मतका आश्रयण करलिया। अर्थात् सब शाक्तोंने शंकरजीसे महावाक्योंका उपदेश ग्रहण किया।

फिर दूसरे दिन लक्ष्मीके उपासक शंकरजीके पास आकर कहने लगे। सम्पूर्ण फलोंके देनेवाली महालक्ष्मी है। उसीकी उपासनासे पुरुषको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ मिलते हैं, और वह जगत्की माता है, उसीका नाम प्रकृति भी है, उसीकी उपासना करनेसे पुरुषको भोग, मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति होती है। आपभी उसीकी उपासना करो क्योंकि वही लक्ष्मी सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाली है, और प्रलयकालमें वह जगत्का नाशभी करती है। इसलिये वह प्रकृति जगत्का ईश्वर है। उस लक्ष्मीसे भिन्न दूसरा कोई भी जगत्-

का ईश्वर नहीं है, शङ्करजी कहतेहैं कि, वह लक्ष्मी तुम्हारी जड है या चेतन है? चेतन तो उसको तुम मान सकते नहीं, क्योंकि दूसरा नाम उसका तुमने प्रकृति रक्खा है, और प्रकृतिको जड और चेतनके अधीन लिखा है, जडमें जगत्के रचनेकी शक्ति नहीं है, और जडको कर्त्तापना भी नहीं बनता है। क्योंकि कर्त्ता चेतन ही होता है, फिर जडमें भोग, मोक्ष, देनेकी शक्ति भी नहीं है। और जड मिथ्या भी है, इन्हीं हेतुवोंसे तुम्हारा मानना ठीक नहीं है। तुमने कामनाके अधीन होकर एक लक्ष्मीकी कल्पना कररक्खी है, सो तुम्हारी कल्पित लक्ष्मी पुरुषका कल्याण कदापि नहीं करसक्ती है। तुम लोगोंने उलटा रास्ता पकडा है, अद्वैत मतका तुम आश्रयण करो, विना अद्वैत मत अङ्गीकार किये पुरुषका मोक्ष कदापि नहीं होता है "द्वितीयाद्वै भयं भवति" द्वैतसे ही अर्थात् दूसरे से ही पुरुषका भय होता है, अपनेसे भय किसी को कदापि नहीं होता है इसलिये अद्वैत मतही कल्याणकारक है, शंकरजीके वचनोंने लक्ष्मीके भक्तोंके हृदयमें असर किया और उन्होंने भी शंकरके मतका ही आश्रयण किया।

दूसरे दिन शारदाके भक्तोंने आकर शंकरजीसे कहा शारदाकी ही उपासना करना उचित है जैसे वेद नित्य है, तैसे शारदाभी नित्य हैं, क्योंकि शारदाही वेदरूप है। और सम्पूर्ण वाणियोंकी वह मालिक हैं। ब्रह्मा आदिकोंको भी वह उत्पन्न करनेवाली हैं और प्रलयकालमें वह सबको नाश करनेवाली भी हैं, उनहीं की उपासनाको हम लोग करते हैं, आप भी करिये। शंकरजीने शारदाके भक्तोंसे कहा कि, सृष्टिकालमें वेद परमात्माके श्वासोंसे उत्पन्न होते है और प्रलयकालमें नाशको प्राप्त होजाते हैं। क्योंकि वेद शब्दात्मक हैं, जितना शब्द है, एक क्षणमें उत्पन्न होता है, दूसरे क्षणमें स्थित रहता है। तीसरे क्षणमें नाशको प्राप्त होजाता है, कोई भी शब्द नित्य नहीं होसक्ता है। जब कि शब्द सब अनित्य हैं, तब शब्दोंका अधिष्ठाता देवता जिसको तुम शारदा मानते हो, वह कैसे नित्य होसक्ती है? कदापि नहीं होसक्ती है। फिर सब देवता भी जीवकोटिमें उत्पत्ति नाशवाले हैं, वह कैसे नित्य और कर्मोंके फलके देनेवाले होसक्ते हैं, कदापि नहीं होसक्ते है, फिर जिस

शारदाको तुम ब्रह्माके मुखमें रहनेवाला नित्य मानते हो, वह ब्रह्मा तो प्रलयकालमें नाशको प्राप्त होजाता है। तब तुम्हारी शारदा कैसे नित्य हो सक्ती है ? एक चेतन ब्रह्मही नित्य है, उससे भिन्न और सम्पूर्ण जगत् अनित्य है। विना अभेद ज्ञानके पुरुष कदापि शांतिको नहीं प्राप्त होता है, और जो काली आदिक देवियोंके उपासक बने हैं, और दुराचार कर्मोंको जिन्होंने धर्म बनाया है वह सब अज्ञानरूपी गर्तमें गिरे हैं, क्योंकि वेदबाह्य उनका आचार है, सुरापान करनेवालेको महापापी लिखा है। जो ब्राह्मण मद्यपान करता है, वह घोर नरकमें जाता है। तुम लोगोंने वेदमार्गका त्याग कर दिया है, इसलिये तुम प्रायश्चित्ती होगये हो, अब भी तुम इस अधर्म मार्गका त्याग कर प्रायश्चित्त करके वेदमार्गका आश्रयण कर लेवोगे, तब तुम आत्मज्ञानके अधिकारी होसकते हो, इसमें विलम्ब मत करो, शंकरजीके उपदेशसे उन्होंने भी प्रायश्चित्त करके शंकरजीके शिष्य बनकर शंकरजीसे आत्मज्ञानका उपदेश ले लिया।

फिर एक दिन वासुदेवका भक्त शंकरजीके पास आकर कहने लगा। हम वासुदेवकी उपासनाको करते हैं क्योंकि वासुदेव ही ईश्वर हैं, वही सब अवतारोंको धारण करते हैं। जब २ भक्तोंपर कोई कष्ट आता है, तब तब वह अवतारको धारण करते हैं, और भक्तोंकी सेवाके अनुसार उनको फलभी देते हैं, और जैसे पक्षी दोनों परोंसे उडसक्ता है, एकसे नहीं उड सक्ता है, वैसेहीं इस मतमें ज्ञान और कर्म दोनोंसे मुक्ति मानीहै। केवल ज्ञानसे मुक्ति नहीं मानी है, और जो पुरुष उस वासुदेवकी शरणको प्राप्त होता है, वह संसार बन्धनसे छूट जाता है, इसलिये तुम भी हमारे मतको स्वीकार करो।

शंकरजीने कहा वासुदेव भी ईश्वरका अंश है, ईश्वर नहीं है। क्योंकि जीवके ही अनेक अवतार अर्थात् अनेक जन्म होते हैं, ईश्वरके अनेक जन्म नहीं होते है, इसी वार्ताको श्रुति भी कहती है। "न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते" न कोई तिसका कार्य्य याने स्थूल शरीर है, और न कोई तिसका कारण याने इन्द्रिय है। शरीर इन्द्रियोंवाला जीव ही होता है, ईश्वर शरीर इन्द्रियोंसे रहित है और ज्ञान कर्म दोनोंसे मुक्ति कदापि नहीं होती है, किंतु केवल ज्ञानसे ही

मुक्ति होती है ? निष्काम कर्म अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये माने हैं । फिर जिसको कर्तृत्व अभिमान होता है, वह कर्मोंका अधिकारी है, जो कर्तृत्व अभिमानसे रहित है, वह ज्ञानका अधिकारी है, दोनों परस्पर विरोधी धर्म एकमें नहीं रहसक्ते हैं । इसलिये ज्ञानकर्मका समुच्चय भी नहीं होसक्ता है, और अनेक श्रुतिवाक्य ज्ञानसे ही मुक्तिको कथन करते हैं । विना ज्ञानके मोक्ष नहीं होता है, तुम्हारा मत श्रुतियुक्तिसे विरुद्ध है, इसवास्ते तुम इस मतका त्याग करके अद्वैत मतका आश्रयण करो, शंकरजीके वाक्योंको श्रवण करके वासुदेवके उपासकोंने भी अद्वैत मतका आश्रयण करलिया ।

फिर एक दिन भागवतमतानुयायी सब मिलकर शंकरजीके पास आये और शंकरजीसे कहने लगे भगवन् ! हम विष्णुकी उपासनाको करते हैं, और विष्णुके शंखचक्रादिक चिह्नोंको धारण करके हम विष्णुरूप होजाते हैं, और अन्तकालमें विष्णुके लोकको प्राप्त होते हैं, और तुलसीकी माला धारण करनेसे तथा ऊर्द्ध पुण्ड्र तिलकके लगानेसे मुक्ति हमारे करमें स्थित रहती है हमारा मत बहुत ही उत्तम है । शंकरजीने कहा तुम्हारा मत वेद शास्त्रसे बाह्य है, और पाखण्डरूप है, क्योंकि धर्मशास्त्रमें लिखाहै कि, जो तप्तमुद्रा धारण करता है उसके हाथका जल पीना वर्जित है । उसके दर्शनसे सचैल स्नान करना लिखा है । फिर यदि दगानेसे मुक्ति होती हो तो बैल भी दगाये जाते हैं । उनकी भी मुक्ति होनी चाहिये और जो तुमने कहा कि, हम शंखचक्रादिकोंको धारण करके विष्णु रूप होजाते हैं, ऐसा तुम्हारा कथन भी असंगतहै, क्योंकि विष्णुमें जो सर्वज्ञत्वादिक और समतादिक गुण हैं, उनमेंसे एक भी गुण तुम्हारेमें नहीं दिखाता है । किन्तु उलटे रागद्वेषादिक अधोगतिको लेजानेवाले आसुरी सम्पदके धर्म हैं सो तुम्हारेमें भरे हैं । फिर तुम्हारा जो कथन है, सो भी मिथ्या है, और तुलसीके धारण करनेसे और ऊर्द्ध पुण्ड्र लगानेसे यदि मोक्ष होता तो शास्त्रोंमें श्रवण मननादिज्ञानके साधन क्यों विधानकिये जाते । तुलसी एक वनका वृक्ष जडयोनि है । उसमें यदि कुछ सामर्थ्य होती तो प्रथम अपनी मोक्ष करलेती, जडयोनिसे छूट जाती । फिर जो आपही जड है वह दूसरेका कल्याण कैसे करसक्ता है ? और विष्णुलोककी प्राप्तिका नाम मोक्ष नहीं है ।

क्योंकि महाप्रलयमें विष्णुका-लोक नहीं रहता है । तो तल्लोक निवासी कैसे रहसक्ते हैं ? मुक्तिको तो वेदमें नित्य लिखा है।"न सः पुनरावर्त्तते"॥२॥वह मुक्त पुरुष फिर लौटकर नहीं आता है,इत्यादि युक्ति प्रमाणोंसे तुम्हारा मत वेद विरुद्धहै । यदि तुमको कल्याणकी इच्छा हो तो इस वेदविरुद्ध मतको त्याग करके अद्वैत मतको तुम आश्रयण करो । शंकरजीके उपदेशसे वासुदेवके उपासकोंने भी अद्वैत मतका आश्रयण कर लिया ।

फिर एक दिन नारद पञ्चरात्रमतके पुरुषोंने आकर शंकरजीसे कहा-विष्णुकी मूर्ति बनाकर उसका पूजन करना उसको भोग लगाना, उसकी आरती उतारना, उसके आगे नृत्यादिक करना उसमें ईश्वरबुद्धि करना, उसके सम्मुख बैठकर विष्णुके मन्त्रोंका जपकरना, यही हमारा मत है, और यही मत पुरुषोंको धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका देनेवाला है । आप भी इसी मतको स्वीकार करें । शंकरजीने कहा विष्णुनाम व्यापक परमात्माका है । "व्याप्नोतीति विष्णुः" । जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको व्याप्त करके स्थित होवै उसीका नाम विष्णुहै, मूर्त्तिमानका नाम विष्णु नहीं है, क्योंकि जो जो मूर्तिमान है, सो सो नाशी है । फिर जिस परिच्छिन्न जडमूर्तिकी तुम उपासना करते हो उसमें वर, शाप, देनेकी सामर्थ्य कहाँ है । वह तो तुम्हारी बनाई हुई है, और फिर जो तुम नृत्यादिक उसके आगे करते हो, उनको देखनेकी भी सामर्थ्य उसको नहीं है । तुम्हारा यह भ्रमज्ञान है, भ्रमज्ञान कल्याणका हेतु नहीं होता है । फिर वेदोंका सार भूत जो गायत्री मन्त्र है उसका त्याग करके स्वकल्पित मन्त्रोंका तुम जपकरते हो, येभी परिश्रम तुम्हारा निरर्थक है तुम अज्ञानरूपी कूपमें गिरे हो जब तक तुम आत्मज्ञानके साधनोंका आश्रयण नहीं करोगे तबतक कदापि कल्याण नहीं होगा । शंकरजीके उपदेशोंको सुन पञ्चरात्रमतका त्याग करके शंकरजीके मतका उन्होंने स्वीकार करलिया ।

फिर एक दिन ब्रह्माके उपासक आकर शंकरजीसे कहनेलगे चतुर्मुख ब्रह्मा ही जगत्के कर्ता हैं।स्वर्णकी उसकी दाढी है हाथमें कमण्डलु लिये है।ब्रह्मलोकमें रहतेहैं वे पूजने योग्य हैं उनकी उपासना करनेसे मुक्ति होतीहै, क्योंकि वह ईश्वरहैं शंकरजीने कहा ब्रह्मा ईश्वर नहीं है, किंतु जीव है, क्योंकि ब्रह्माको भी वेदमें प्रथम शरीरी

जीव लिखा है, और जिस निराकार चेतनकी उपासना करके जीव ब्रह्मपदवीको प्राप्त होजाताहै, वह चेतन ब्रह्म ईश्वर है; और ब्रह्मा तो आपही जन्ममरणवाला है वह ईश्वर कैसे होसक्ताहै। ईश्वर निरवयव निराकार है, उसकी उपासनासे पुरुषको नित्य सुख प्राप्त होता है। विना अभेदज्ञानके पुरुषका कल्याण कदापि नहीं होता है। ब्रह्माके भक्तोंने भी अद्वैत मतका आश्रयण करलिया।

फिर अग्निके उपासक आकर शंकरजीसे कहने लगे कि, अग्निका माहात्म्य वेदमें लिखा है, और अग्निकी स्तुति वेदमें की है अग्निके उपासकोंने वेदमें सत्यलोककी प्राप्ती कही है। जगत्का सम्पूर्ण व्यवहार अग्निके ही आश्रित है, इसीसे जाना जाता है कि, अग्नि ही ईश्वर है। शंकरजीने अग्निके उपासकोंसे कहा अग्नि ईश्वर नहीं है। क्योंकि अग्निकी उत्पत्ति वेदमें लिखी है और प्रलयकालमें अपने कारणमें इसका लय भी लिखा। फिर ज्ञानादिकोंसे अग्नि रहित भी है, चाहे कोई कैसा ही मलीन पदार्थ उसमें क्यों न फेंकदे उसको तिसका ज्ञान नहीं है। यदि चेतन होता तो मलिन पदार्थ फेंकनेवालेको मना करता। फिर यदि अग्निके उपासकको अग्निमें फेंकदिया जाय तो उसको भी जलादेता है। क्योंकि जड है, यदि चेतन होता तो अपने प्यारे उपासकको क्यों जलाता और जल डालनेसे नाशको भी प्राप्त होजाता है। जो चेतन अग्निको भी अपने व्यवहारमें सत्ता स्फूर्ति देता है और जिसके भय करके अग्नि भी सदैव भयभीत रहता है। वही ईश्वर है उसीकी उपासनासे पुरुषोंका कल्याण होता है, तुम भी उसी चेतनकी उपासना करो शंकरजीके उपदेशको सुनकर अग्निके उपासकोंने भी अद्वैतमतको ग्रहण करलिया।

फिर एक दिन जलके उपासक शंकरजीसे आकर कहने लगे हम जलकी उपासना करते हैं, क्योंकि जलसे ही सम्पूर्ण प्रजा जीती है। जलके वरसनेसे ही सब अन्नादिक उत्पन्न होते है, यदि जल न वरसे तो वे सब प्रजा नष्ट भ्रष्ट हो जायँ फिर यदि अन्न पुरुषको सोलह दिनतक न मिलै और जल मिलता रहे तो पुरुष मृत्युको नहीं प्राप्त होता है, और जो जल पुरुषको सोलह प्रहरतक न मिलै तो पुरुष कदापि नहीं जीसक्ता है। इसलिये जल ही भगवान् है, शंकरजीने कहा

जल भी उत्पत्तिवाला है और जड है, अपनेका ज्ञान जलको नहीं है, जलमें लोग विष्ठा मूत्रादिकोंको करदेते हैं, वह मना नहीं करता है, क्योंकि जड है। यदि जलका उपासक भी जलमें गिरपडे तो उसको भी बहा देता है । जैसे अग्निको जीवोंके भोगके लिये परमात्माने उत्पन्न किया है । तैसे जलको भी पुरुषोंके भोगके लिये उत्पन्न किया है, जल ईश्वर नहीं है। और जीवोंके अदृष्टाऽनुसार ईश्वरकी आज्ञासे जल बरसता है। क्योंकि जड पदार्थका व्यवहार स्वतंत्र नहीं होता है। जल भी जड होनेसे परतन्त्र है चेतन ईश्वर ही स्वतन्त्र है। तुम भ्रममें पडे हो तुम्हारा मत युक्तिसे और वेदसे विरुद्ध है। जलके उपासकोंने भी जलकी उपासनाको छोडकर शंकरजीके मतको स्वीकार करलिया।

फिर वायुके उपासकोंने शंकरजीसे कहा कि हम वायुकी उपासना करते हैं क्योंकि वायुकी स्तुति वेदमें लिखी है, वायुही ईश्वर है, यदि एक क्षणमात्र भी वायु रुकजाय तो कोई भी प्राणी प्राणोंको धारण न करसके और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको वायु ही घुमा रही है इसलिये वायु ही ब्रह्म है। शंकरजीने कहा वायु भी जड है, और उत्पत्तिवाला है, वेदमें वायुकी भी उत्पत्ति लिखी है प्रलयकालमें वायुका नाशभी लिखा है। इसलिये वायुभी ईश्वर नहीं है, वायुको भी ईश्वरने जीवोंके भोगके लिये उत्पन्न किया है, तुम्हारा भी भ्रमज्ञान है तुम शुद्ध ब्रह्मकी उपासना जबतक नहीं करोगे तबतक तुम्हारा कल्याण कदापि नहीं होगा, वायुके उपासकोंने भी शंकरजीसे उपदेश लेकर अद्वैत मतको अंगीकार करलिया।

आकाशके उपासकने आकर शंकरजीसे कहा आकाश ही ब्रह्म है, ऐसा वेदमें कहा है, आकाशमें ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड स्थित हैं, सबको अवकाश देता है, इसलिये हम आकाशकी उपासना करते हैं, शंकरजीने कहा आकाश शून्य पदार्थ है, शून्य ब्रह्म नहीं होसक्ता है। जो शून्यका जाननेवाला है, वह ब्रह्म है फिर "तस्मादाकाशः सम्भूतः" तिस चेतनसे प्रथम आकाश उत्पन्न हुआ यह वेदवाक्य आकाशकी उत्पत्तिको कहता है, आकाश जड है, ब्रह्म नहीं है, इस भ्रमज्ञानका त्याग करके यथार्थ ज्ञानका आश्रयण करो, शंकरजीके उपदेशको सुनकर उन्होंने भी अद्वैतमतको अंगीकार किया।

फिर सूर्य्यके उपासक शंकरजीके पास आकर कहने लगे कि, सूर्य्य भगवान्‌की उपासनासे ही जीवोंको चारों पदार्थ मिलते हैं। क्योंकि सूर्य्य ही ईश्वर हैं सूर्य्यके उदय होनेसे संसारमें सब प्राणी अपने २ व्यवहारको करते हैं। सूर्य्यके अस्त होनेपर कोई भी प्राणी व्यवहारको नहीं करसक्ता है इत्यादि युक्ति और प्रमाणोंसे सूर्य्य ही ईश्वर सिद्ध होता है और जितने विष्ण्वादिक देवता हैं वे सब कानोंहीसे सुने जाते हैं, नेत्रों करके नहीं दिखाते हैं, इसीवास्ते उनके होनेमें आचार्योंका वादाविवाद भी है। परन्तु सूर्य्य भगवान्‌के होनेमें किसीका वादाविवाद भी नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष दिखाता है। इसीवास्ते हम सूर्य्यकी उपासना करते हैं। शंकरजीने कहा वेदमें सूर्य्यको लोक लिखा और उपासकोंके लिये उत्तरायण दक्षिणायन नाम करके दो मार्ग लिखे हैं। जैसे यह पृथ्वी लोक जड है, तैसे सूर्य्य लोक भी जड, है। जैसे इस लोकमें रहनेवाले सब जीव चेतन हैं, तैसे सूर्य्यलोकमें रहनेवाले भी चेतन हैं। फिर, सूर्य्यलोककी उत्पत्ति, और प्रलयकालमें नाश भी लिखा है। जो उत्पत्ति नाशवाला पदार्थ होता है वह ईश्वर नहीं होता है, क्योंकि ईश्वर उत्पत्ति नाशसे रहित है, और जो प्रत्यक्षका विषय होता है, वह जड ही होता है ईश्वर प्रत्यक्षका विषय नहीं है, किन्तु अनुमेय है, इसीवास्ते चेतन है सूर्य्यकी उपासनासे कदापि पुरुषका मोक्ष नहीं होताहै। मोक्ष आत्मज्ञान विना कदापि नहीं होता है। शंकरजीके वचनोंको सुनकर सूर्य्यके उपासकोंने भी अद्वैत मतको अंगीकार करलिया।

फिर एक दिन गणेशके उपासकोंने आकरके शंकरजीसे कहा—गणेश ही ईश्वर हैं क्योंकि महादेवने भी गणेशजीका पूजन किया है। शंकरने कहा गणेशजी महादेवजीके पुत्र हुए हैं, वह जीवकोटिमें हैं, ईश्वर नहीं हैं, गणेशके उपासकोंको भी शंकरजीने अद्वैत मतका उपदेश करके अपने मतमें करलिया। शंकरजीने पाण्डयदेश, और चोलदेश, तथा द्रविड देशके मतवादियोंको थोडे ही कालमें विजय करलिया।

फिर वहाँसे शंकरजी कांचीपुरमें पहुँचे, वहाँ पर कुछ काल रहकर शारदा नामका एक मठ उस जगहमें स्थापित किया और वहां पर भी अद्वैत

मतका ही सबको उपदेश किया। वहांसे ताम्रपर्णी नदीके किनारेपर जा रहे। उस नदीके किनारे पर रहनेवाले जो लोग थे उन्होंने आकर शंकरजीसे कहा कि अद्वैत मत आपका सिद्ध नहीं होता है क्योंकि जीव अल्पज्ञ है, ईश्वर सर्वज्ञ है, दोनोंकी यदि ऐक्यता मानोगे तब जीवको भी सर्वज्ञ होना चाहिये, या ईश्वरको भी अल्पज्ञ होना पडेगा। फिर जीव शुभ अशुभ कर्मोंके बन्धन करके बन्धायमान है ईश्वर कर्मोंके बन्धनसे रहित है, बन्ध, मोक्षका अभेद कैसे होसक्ता है? फिर जीव जिस देवताकी उपासनामें मन लगाता है, उसी देवताके लोकको प्राप्त होता है। ईश्वरको प्राप्त नहीं होता है, तब जीव, ईश्वरका अभेद कैसे होसकता है। शंकरजीने कहा—जीवकी उपाधि अन्तःकरण अल्प है, और अज्ञानका कार्य्य है, इसलिये जीव अल्पज्ञ है, और अपने स्वरूपके ज्ञानसे रहित है, इसीवास्ते कर्मों करके बन्धनको प्राप्त होता है, और अपनेसे भिन्न देवतान्तरकी उपासनाको करता है, ईश्वरकी उपाधि माया महान है, इसीसे ईश्वर सर्वज्ञ है, और ईश्वरको सर्वदा अपने स्वरूपका ज्ञान बना है, और कर्म बन्धनसे रहित भी है। जबतक जीवको अज्ञान बना है तबतक दोनोंका भेद है, और जब साधनों करके जीवको अपने स्वरूपका ज्ञान होजाताहै तब कार्य्यके सहित जीवका अज्ञान नष्ट होजाता है। उपाधि भागोंका त्याग होनेसे मोक्षावस्थामें जीवका ईश्वरके साथ अभेद होजाताहै। अर्थात् शुद्ध ब्रह्ममें जीव लय होजाताहै और व्यवहारकालमें भोगत्याग लक्षणा करके जीव ब्रह्मके अभेदका निश्चय होजाना इसीका नाम आत्मज्ञान है। सो आत्मज्ञान आत्मवित् गुरुके उपदेशसे मुमुक्षुको प्राप्त होताहै और विना अद्वैत आत्मज्ञानके पुरुषका कदापि भी मोक्ष नहीं होता है, फिर जिसको महावाक्यों द्वारा अद्वैत आत्माका बोध हुआ है उसीकी दृष्टिमें सम्पूर्ण जगत् आत्मरूप ही होजाता है भेदभावना उसकी उठ जाती है, वही जीवन्मुक्त कहा जाता है। शङ्करजीके उपदेशको श्रवण करके उन लोगोंने भी शंकरजीसे अद्वैत ज्ञानका उपदेश लिया और वह सभी अद्वैतवादी बनगये।

फिर वहांसे शंकरजी विदर्भदेशको चले गये, और विदर्भदेशके लोगोंको भी भेदबुद्धिसे हटाकर अभेद बुद्धिमें जोडदिया और विदर्भदेशके राजाको

भी अद्वैत आत्माका उपदेश करके अपने साथ लेकर कर्णाटक देशको विजय करनेके लिये गये। जब कि शंकरजी कर्णाटक देशमें पहुँच गये, तब वहाँके लोग शंकरजीके आगमनको सुनकर शंकरजीके समीप प्राप्त होगये, उस देशमें तिस कालमें कापालिक मतके और भैरवके उपासक प्रायः करके रहते थे और कापालिक मतवाले संन्यासियोंके साथ बडा विरोध रखतेथे, और जगत्के अहितकारी आचरण करतेथे और उस नगरमें एक क्रकच नामक कापालिकोंका गुरु रहता था उसने जब सुना कि एक भावी विद्वान् शंकरनामक बहुतसे संन्यासियोंको साथ लेकर इस नगरके वाहेर एक स्थानमें आकर ठहरे हैं, तब वह भी अपने शिष्योंको साथ लेकर शंकरजीके समीप पहुंचा और ऐसा स्वांग बनाये था कि चिताकी भस्म माथेपर लगी थी और मनुष्योंकी खोपडियोंके हार गलेमें पहनेथे और उसके साथके कापालिकोंने भी ऐसा ही स्वांग बनाया था, वह आकर शंकरजीसे कहने लगा, कि, आपने जो मस्तकपर भस्म लगा रखी है वह तो हमको प्यारी लगती है परन्तु आपने नरकपालोंकी मालाको जो धारण नहीं किया है, यह वार्ता हमको बुरी मालूम हुई है। विना नरकपालोंके धारण किये जो केवल भस्मका लगाना है सो दोषका जनक है। जो पुरुष भैरवका पूजन नहीं करता है, वह पशु है और उसका मोक्षभी कदापि नहीं होता है, जो पुरुष भैरवको मदिरा पान नहीं कराता है और मनुष्यकी वलि नहीं देता है उसका कल्याण कदापि नहीं होता है। भैरवको त्याग करके जो पुरुष इतर देवताकी उपासना करता है वह मूर्ख है क्योंकि भैरवही जगत्का उत्पन्न करनेवाला है, इस तरहकी बहुतसी वेदविरुद्ध बातें जब क्रकचनामक कापालिकने शंकरजीसे कही तब सुधन्वा राजाको बडा कोप हुआ राजाने अपने भृत्योंको हुक्म दिया कि इन सब भ्रष्टाचार कापालिकोंका वध करडालो, राजाके भृत्यलोगोंने सब कापालिकोंका उसी क्षणमें वध करडाला, जो कि उनमेंसे भागगये थे उन्होंने दूसरे दिन कापालिक स्वांगका त्याग करके शङ्करजीकी शरण लेली, शङ्करजीने फिरसे उनके संस्कार कराकर उनको अद्वैत मतका उपदेश किया।

अब उस नगरमें भैरवके उपासक कापालिकोंका नाम निशान भी न रहा

क्योंकि भैरवभी एक उनका ही कल्पा हुआ देवता था, यदि सचा होता तो अपने उपासकोंकी कुछ तो सहायता करता, जिससे उसने कुछभी उनकी सहायता न की, इससे साबित होता है कि वह कल्पित था, जैसा कि, भयानक मूर्त्तिवाला उन्होंने अपना भैरव मान रक्खा था, ऐसा भयानक कूकर उसका वाहनभी मानरक्खा था, ऐसा भ्रष्ट खाना भी उसका कल्पित कियाथा "यथा यक्षस्तथा वलिः" इसी तरह कालीके उपासकोंने काली देवी और शीतलाके उपासकोंने शीतला देवी और गदहा उसका वाहनभी कल्पना करलिया है, वास्तवमें वह नहीं हैं, इसी वास्ते इनका मत वेदविरुद्ध है।

क्योंकि वेदमें लिखा है कि—"देवा न अश्नन्ति न पिवन्ति अमृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति" अर्थात् देवता न खाते हैं और न कुछ पान ही करते हैं किन्तु अमृतको देखकर तृप्त होते हैं फिर देवताओंके स्वरूपभी बड़े सुंदर लिखे हैं उनके निमित्त वलि भी दूध आदिक उत्तम पदार्थ लिखे हैं और मांसादिक राक्षसोंका भोजन है, इतनाही देवता और राक्षसोंमें फरक है।

अब आगेकी कथाको सुनो उसी स्थानमें एक दिन शङ्करजी सभाकर अद्वैतमतका उपदेश लोगोंको कररहे थे कि, इतनेमें एक पुरुष जैन मतका मलिन वस्त्रोंको धारण किए हुए शङ्करजीके सन्मुख वैठकर कहनेलगा कि, इस देहके नाश होनेसे जीव मुक्त होजाता है, फिर मोक्षके लिये ज्ञानादिकोंकी क्या आवश्यकता है? शङ्करजीने कहा कि केवल स्थूल देहके नाशसे मोक्ष नहीं होता है, क्योंकि तीन शरीर हैं स्थूल, सूक्ष्म, कारण। स्थूल शरीरका नाश तो प्रारब्ध कर्मके समाप्त होनेपर होजाता है, परंतु सूक्ष्म और कारण शरीर दोनों बने रहते हैं, इन दोनोंका नाश विना आत्मज्ञानके नहीं होता है, जैसे प्रकाशके विना तमका नाश नहीं होता है, तैसेही आत्मज्ञानके विना अज्ञानका भी नाश नहीं होता है और विना ज्ञानके मुक्ति भी नहीं होती है, इसलिये ज्ञानके साधनोंकी भी आवश्यकता है, क्योंकि स्थूल देहके नाशसे मोक्ष नहीं होता है, इतनी बातके होतेही वहाँपर एक बौद्धमतानुयायी सबलनामक शंकरजीके पास आकर कहने लगा कि, एक जो चेतन है सो अपनी इच्छासे अनेक रूपोंको धारण करके आप ही शरीर और मनका प्रेरक बनकर और आपही कर्ता, भोक्ता बनकर संसारमें

क्रीडा करता है, इसी वास्ते जब जीव शरीरका त्याग करता है, तब मुक्तरूप होजाता है, मुक्तिके लिये किसी साधनकी जरूरत नहीं है, शंकरजीने कहा कि, तुम्हारा मत वेदविरुद्ध है, और युक्तिसे भी नहीं ठीक है। सो दिखाते हैं यदि शरीर त्याग समकालमें ही जीवकी मुक्ति होजाती हो, तो फिर इस जन्मके किये हुए जितने शुभ अशुभ कर्म है, वे सब विना ही फलके दिये नष्ट होजायँगे क्योंकि आगे तो जन्म होनाही नहीं है, किस वास्ते कोई शुभ कर्म करैगा, और पूर्व जन्मका भी अभाव होजायेगा, जब कि तुम आगेका जन्म नहीं मानोगे तब पूर्व जन्म भी तुमको नहीं मानना होगा, तब फिर संसारमें कोई सुखी है, कोई दुखी है यह व्यवहार क्यों होता है? पूर्व जन्मभी तुम नहीं मानते हो, और जीवोंको विलक्षण सुख दुःख देखनेमें आता है, इसका कारण सिवाय कर्मोंके और कोई तो तुम मान सक्ते नहीं हो, इस वास्ते तुम्हारा कथन असंगत है; केवल स्थूल शरीरके नाशसे जीवकी मुक्ति कदापि नहीं होतीहै, शंकरजीके उपदेशोंने उसके हृदयमें बहुत असर किया; उसने भी शंकरजीके मतको स्वीकार करलिया।

वहाँसे फिर शंकरजी कर्नाटक देशके अन्तुमल नगरमें गये, वहांपर भी शंकरजीने नगरके बाहर एक उत्तम स्थानमें आसन लगाया और उस नगरके ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे कहा—तुम अपना मत हमको सुनावो? ब्राह्मणोंने कहा—मल्लारी नामक देवीकी हम पूजा करते है; श्वान उसका वाहन है, उस वाहनकी भी पूजा होती है और उस देवताकी मूर्ति बनाकर उसके आगे हम नाचते और गायन भी करते है वह हमारा इष्ट देव है। शंकरजीने कहा तुम्हारे देवताका नाम भी किसी ग्रन्थमें लिखा हुआ नहीं मिलता, यह देवता तो तुम्हारा कल्पा हुआ है, तुम तो देवता करके कल्पे हुए नहीं, तुम ब्राह्मण होकर अब्राह्मणोंके कर्मोंको करतेहो अपने कर्तव्यको तो तुम जानो वेदका पढना और चेतन ब्रह्मकी उपासना तुम्हारे लिये वेदमें लिखी है। मोक्षका घर जो मनुष्य शरीर उसको प्राप्त होकरके भी तुम मूर्खहो रहे हो और तुमको उचित है कि, प्रथम अपने कर्तव्यको जानना, ब्राह्मणके लिये जो कर्तव्य वेदमें कहेहैं, प्रथम तुम उन कर्तव्योंको जानो और फिर उनकी उपासनाको तुम करो, जिसने ब्रह्मा, विष्णु आदिकोंको उत्पन्न किया है फिर उसकी सत्ता करके संपूर्ण जगत् चेष्टाको करता है जो

सच्चिदानंदरूप है, वह ब्रह्म उपासना करनेके योग्य है, जिसके छूजानेसे स्नान करना पडता है और जो अपना बनाया हुआ है वह पूजने योग्य नहीं है, शङ्करजीके उपदेशने उनके हृदयमें असर किया और शङ्करजीके मतको उन्होंने भी स्वीकार करलिया। कुछ दिन शङ्करजी वहांपर रहकर फिर पश्चिमकी तरफ मरुध नाम नगरमें पहुँचे और नगर के बाहर एकांतस्थानमें शङ्करजीने शिष्योंके सहित अपना आसन जमाया उस नगरमें एक विष्वक्सेन-का मन्दिर था उसीके भक्त उस नगरमें बहुतसे रहते थे। शङ्करजीके आनेकी खबर जिस कालमें उनलोगोंको मिली उसी कालमें वह लोग शङ्करजीसे आकर कहने लगे सब देवतोंसे विष्वक्सेनही देवता बडा है, उसीकी उपासना करनेसे पुरुषको चारों पदार्थ मिलते है, और किसीकी उपासनासे चारों पदार्थ नहीं मिलते हैं। शङ्करजीने कहा—मूलके सींचनेसे ही पुरुष फलको प्राप्त होता है, शाखाके सींचनेसे कदापि फल नहीं मिलता है। यह सब देवता जीवकोटिमें हैं, जीव सब शाखा स्थानापन्न हैं, उनकी उपासनासे जीवको कुछ भी फल नहीं मिलता है। जो सबदेवतोंका भी उत्पन्न करनेवाला है, उसी ब्रह्मकी उपासनासे जीवोंको सर्व प्रकारके फल मिलते हैं, इस लिये तुम भी उसी ब्रह्मकी उपासना करो। शंकरजीके वाक्योंको श्रवण करके उन्होंने भी अद्वैत मतको स्वीकार करलिया।

फिर एक दिन मन्मथके उपासक आकर शङ्करजीसे कहने लगे कि, हम मन्मथ जो कामदेव हैं उनकी उपासना करते हैं। क्योंकि सम्पूर्ण जगत्का उत्पन्न करनेवाला कामदेवही है, और वह सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें निवास करता है। और ब्रह्मादिकोंको भी जिसने नेत्रके स्फुरणकालतक जीत लिया है। संसारमें ऐसा कोई देवता व मनुष्य नहीं हुआ है कि जिसने कामदेवको जीता हो, वह बडा बली है, फिर जिसके बलको सब शास्त्रोंवाले पडे गायन करते हैं और उसी कामदेवके प्रतापसे सब पुरुषोंको आनन्द मिलता है, इसी वास्ते सब पुरुष उसी विषयानन्दकी इच्छा करते हैं। फिर जिस कामदेवकी उपासना करनेसे पुरुष अनेकस्त्रियोंके साथ भोग करनेसे भी दोषको नहीं प्राप्त होता है, और स्त्री संभोग जन सुख है, उसी-

का नाम मोक्ष सुख है; जिस हेतुसे काम चेष्टासे ही सृष्टि उत्पन्न होती है, इसी वास्ते कामदेवही ईश्वर है। यदि स्त्रीभोग न किया जाय तो किसी तरहसे भी मनुष्य तथा पश्वादिकोंकी सृष्टि नहीं होसकती है। कामदेवसे भिन्न कोई ईश्वर होता तो विना मैथुनके सृष्टि; उत्पन्न करदेता, बस इसीसे सावित होता है कि कामदेवही ईश्वर है, इसलिये उसीकी उपासना हम करते हैं। शंकरजीने कहा तुम लोग भूले पडे फिरते हो, विचारसे शून्य होकर तुमने कामदेवको ईश्वर मान रक्खा है। अन्नादिकोंको जब पुरुष भक्षण करता है, तब उसके रसोंका सार-भूत एकरस शरीरमें उत्पन्न होता है, उसीका नाम काम है, जब स्त्री प्रसंग कर चुकता है, तब वह रस गिरकर नष्ट होजाता है, या स्त्रीके गर्भाशयमें जाकर रूपान्तरको प्राप्त होजाता है, वह तो आपही उत्पत्ति नाशवाला है। वह ईश्वर कैसे होसक्ता है; फिर काम कोई मूर्तिमान पदार्थ नहीं है, किन्तु शरीरकी एक गर्मीका नाम काम है; जो कि, पुरुषोंके मनको व्याकुल करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पदार्थोंसे जीवोंको प्रच्युत कर देता है, और अधोगतिका प्राप्त कर देता है, अज्ञानी लोग ही उसके वशीभूत होकर व्यभिचार कर्म करते हैं, ज्ञानी नहीं करते हैं। विषयी और नास्तिक पुरुष ही कामकी उपासना करके बार २ क्षुद्र योनियोंको प्राप्त होते हैं, और इस जन्ममें भी वह रोगी रहते हैं, और अल्पायुवाले तथा दुर्बल ही होते हैं। ये पुरुष कामके वशीभूत नहीं हैं, बल्कि कामको जिन्होंने अपने काबूमें करलिया है, वे दीर्घायुवाले बडे पराक्रमी तथा बली होते हैं। वे पुरुष मोक्षके अधिकारी होते हैं। शंकरजीने अनेक युक्ती और प्रमाणों करके कामके उपासकोंको भी सत्यमार्गमें लगाया।

फिर शंकरजी वहांसे मगध नगरमें चले आये, वहांके रहनेवालोंने जिसका-लमें सुना कि एक संन्यासी बडे भारी विद्वान् इस नगरमें आये हैं, तब बहु-तसे लोग मिलकर शंकरजीके पास आये, और शंकरजीसे कहने लगे कि, भगवन्! हमलोग सब कुबेरके उपासक हैं, अर्थात् हम सब कुबेर हीकी उपासना करते हैं, क्योंकि सब निधियोंके मालिक कुबेरही हैं, जिसको वे चाहते हैं, उसीको धनरूपी निधि देते हैं, जो पुरुष उनकी उपासना नहीं करते हैं, वही निर्धन और दुःखी रहते हैं, और संसारमें बिना धनके किसीको

सुख नहीं होता है, और धनसे विना धर्मका कोई भी कार्य नहीं होता है। धनादिकोंकी प्राप्तिके लिये कुबेरकी उपासना करना मनुष्यमात्रको उचित है और जितने ब्रह्मादिक बडे २ देवता हैं, वे सब भी कुबेरके दिये हुए धनको पाकर सुख भोगते है। इसीसे जानाजाता है कि, कुबेरही ईश्वर है। शंकरजीने कहा—संसारमें बहुतसे पुरुष ऐसे हैं कि, कुबेरको जानते भी नहीं हैं, और बहुतसे ऐसे हैं कि कभी स्वप्नमें भी कुबेरका नाम नहीं लेते हैं, और उनके घरोंमें लक्ष्मी नृत्यकर रही है, और राज्यादि भोग भी सब उनको प्राप्त हैं, और बहुतसे पुरुष तुम लोगोंमेंसे ऐसे भी हैं कि, रात्रि दिन कुबेर २ ही करते रहते हैं, तो भी उनको पेट भर खानेको नहीं मिलता है। इसमें तुम क्या कारण मानते हो यदि कुबेरको धनादिकोंका देनेवाला मानोगे तो वह अपनी उपासनासे उनको क्यों देता है, और अपनी उपासनावालोंको क्यों नहीं देता है जिस हेतुसे कुबेर धनादिकोंके देनेमें समर्थ नहीं है, इसीसे वह ईश्वर भी नहीं है, किन्तु जीव है। जो सर्वशक्तिमान कुबेरका भी पैदा करनेवाला है, वही ईश्वर है, वही सर्व जीवोंको कार्मोके अनुसार फलको देता है, जो शुभकर्म करता है उसको वह धन सम्पत्ति देता है, और जो शुभकर्म नहीं करता है उसको नहीं देता है। फिर धनादिकों करके नित्य सुखकी प्राप्ति भी किसीको नहीं होती है उलटी तृष्णा बढती है, इसीवास्ते इनको मुक्तिमें प्रतिबन्धक माना है, यदि तुमलोग अपनी कल्याणकी इच्छावाले हो तो कुबेरकी उपासना त्यागकर निर्गुणकी उपासना करो। शङ्करजीके उपदेशने उनके मनमें बडा असर किया उन्होंनेभी शङ्करजीके मतको स्वीकार करलिया।

फिर दूसरे दिन इन्द्रके उपासक शङ्करजीके पास आकर कहने लगे भगवन्! देवराज जो इन्द्र हैं हम उसीकी उपासनाको करते हैं, क्योंकि श्रुतियोंमें इन्द्रकी स्तुति करी है, और इन्द्र अमरभी हैं, इस लिये हम इन्द्रको ही ईश्वर मानतेहैं और अमृत भी इन्द्रहीके पास रहता है, जिसके पीनेसे पुरुष अमर होजाता है. वह अमृत विना उसकी उपासना किसीको भी नहीं मिलती है और पृथ्वी पर वृष्टि करनी भी इन्द्रकेही अधीन है यदि इन्द्र वृष्टि न करै तो कोई भी अन्नादिक उत्पन्न न हो, इस लिये हम इन्द्रको ही ईश्वर जानकर उसकी उपासना करते हैं

फिर शंकरजीने कहा कि, इन्द्र देवतोंका राजा होकर स्वर्गमें स्थित है, वह भी एक जीव है, उपासना करके उसको इन्द्रपदवी प्राप्त हुई है फिर ब्रह्माके एक दिनमें चौदा इन्द्र स्वर्ग भोगते हैं, वह इन्द्र ईश्वर नहीं होसक्ता है, क्योंकि जन्म मरणवाला है, फिर इन्द्रने ब्रह्मासे जाकर आत्मविद्याका उपदेश लिया है, वह ब्रह्मा जीव कोटिमें है, जो चेतन ब्रह्मादिकोंका भी उत्पन्न करनेवाला है, वही ईश्वर है, उसी ईश्वरको इन्द्र नाम करके वेदने स्तुति की है, उसी व्यापक चेतनकी उपासनासे पुरुष मुक्तिको प्राप्त होता है, उस परमात्माकी महिमाका कुछ भी अन्त नहीं है, और न उसके नामोंका अन्त है, उसीकी इच्छासे अनेक स्वर्गादि लोक और तन्निवासी इन्द्रादि देवता उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, वह न जन्मता है, न मरता है, उसीकी उपासना करनेसे पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है। इस लिये तुम भी उसीकी उपासना करो, इन्द्रके भक्तोंने भी इन्द्रकी उपासनाका त्याग करके निराकार ब्रह्मकी उपासना अङ्गीकार करलिया।

फिर वहाँसे शंकरजी यमप्रस्थपुरमें आये, वहांपर यमके उपासक प्रायः करके रहते थे। शंकरजीके आगमनको सुनकर वह भी शंकरजीके पास आकर कहने लगे—हम यमराजकी उपासना करते हैं, महिष उसका वाहन है, इस लिये हम भुजोंपर महिषके चिह्नोंको लगाते हैं, माथनाय हमारा प्रणाम है, यमराज ही जगत्की उत्पत्ति पालन करनेहारे हैं, और अन्तमें संहारभी जगत्का वही करते हैं, जो पुरुष यमराजकी उपासना करता है, वह यमकी शासनासे छूट जाता है, और वेदमें भी यज्ञोंका भोक्ता यमराजको ही कहा है। इस लिये यम ही ईश्वर है। शङ्करजीने कहा—तुम्हारा मत भी वेदबाह्य है, क्योंकि यमको भी लोकपालोंमें जीव करके कहा है, जो मूर्तिमान है, वही महिषकी सवारी कर सक्ता है, वही जीव कहा जाता है, वह यमभी जिसके भय करके रात्रि दिन भ्रमता फिरता है, वही ईश्वर है, वेदमें यम शब्द है सो ईश्वरका वाचक है, जो अन्तर्यामी होकर सबके हृदयमें प्रेरणा करता है और जीवमात्रके कर्मोंका साक्षी है, वही ईश्वर है। यदि तुमको कल्याणकी इच्छा है तो तिसी निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करो विना उसकी उपासनाके कदापि तुम मोक्षको प्राप्त नहीं होगे, शङ्करजीके उपदेशको श्रवण करके उनके भी मन मोहित होगये और वह भी अद्वैतवादी बन गये।

उस नगरमें कुछ दिन रहकर फिर शंकरजी प्रयागराज तीर्थमें चले आये। उस कालमें वहांके सब ब्राह्मण वरुणदेवताकी उपासना करते थे और वरुणदेवता के चिह्नोंको उन्होंने धारणभी किया था और उन्होंने शङ्करजीसे कहा—हम वरुणदेवताकी उपासना करते हैं और उसी को ईश्वर करके मानते हैं। शङ्कर-जीने कहा—वरुणदेवता ईश्वर नहीं है, वह जलोंका अभिमानी अर्थात् जलोंका एक राजा जीव माना गया है, वह उत्पत्ति नाशवाला है, तुम्हारी भूल है, जो ईश्वरको त्याग कर अनीश्वरको तुमने ईश्वर मान रक्खा है, यह तुम्हारा भ्रमज्ञान है, इसीसे तुम्हारा मानना मिथ्या है, सत्य नहीं है, विना अद्वैत आत्मज्ञान के पुरुषकी मुक्ति कदापि नहीं होती है, उनको भी शङ्करजीने सच्चा उपदेश करके सच्चे रास्तेमें लगाया।

फिर एक दिन प्रधान वादी सांख्य शंकरजीसे आकर कहने लगा, जगत्को प्रधान ही उत्पन्न करता है, जगत्का कर्ता प्रधान ही है उसीका नाम प्रकृति भी है, वही कर्ता कहा जाता है, और कोई ईश्वर जगत्का कर्ता नहीं है, इस लिये प्रधानकी उपासना करना उचित है, जीवात्मा भोक्ता है, कर्ता नहीं है। जीवात्मा चेतन है, प्रधान जड है, जबतक जीवात्माका प्रकृतिके साथ संयो-ग बना रहता है, तबतक जीवात्माको बन्ध होता है, जिसकालमें प्रकृतिका वियोग होजाता है, तब जीव मुक्त होजाता है। उसका सम्बन्ध उसकी उपासना करनेसे दूर होता है, इस लिये हम प्रधानकी उपासना करते हैं। शङ्करजीने कहा तुम्हारा मत भी वेदविरुद्ध है, क्योंकि तीनों गुणोंकी सौम्याव-स्थाका नाम ही प्रधान है, वह प्रधान जड कर्ता नहीं हो सक्ता है, क्योंकि वेदमें इच्छा सुनी गई है, सृष्टयादिकालमें परमात्मामें ऐसी इच्छा हुई कि मैं एकसे अनेक होजाऊँ और जगत्को उत्पन्न करूँ, सो ऐसी इच्छा चेतनमें ही होती है, इसलिये प्रधान जगत्का कर्ता नहीं होता है, जो प्रधानकी उपासना करते हैं, वे अन्धतम अज्ञानको प्राप्त होते है, और जो चेतनकी उपासना करते है, वह नित्य सुख जो मोक्ष है उसको प्राप्त होते हैं, और जो तुमने कहा कि, जीवात्मा भोक्ता है, कर्ता नहीं। सो यह भी तुम्हारा कथन असंगतहै, क्योंकि जो कर्ता होता है, वह भोक्ता भी होता है, ऐसा नहीं होसक्ता है कि, कर्ता

अन्यहो, और मोक्ता अन्य हो। अज्ञानकृतही जीवको बन्ध है। उस अज्ञानका आत्मज्ञान करके ही नाश होता है, अन्य कर्मकी उपासना करके उसका नाश नहीं होता। ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'' ज्ञानसे विना मोक्ष कदापि नहीं होताहै। तुम्हारा मत वेदविरुद्ध है इससे त्यागने योग्य है। शङ्करजीके उपदेशसे सांख्य-मतवालोंके भी चित्त कपिलमतसे फिरकर अद्वैत मतकी तरफ रुजू होगये, और अद्वैत मतको उन्होंने भी अङ्गीकार करलिया।

फिर दूसरे दिन योगमतवाले शङ्करजीके पास आकर कहने लगे कि, हमारा मत उत्तम है, क्योंकि विना योगाऽभ्यासके चित्तकी शान्ति कदापि नहीं होती है, और षट्चक्रोंका भेद जिसने जान लिया उसने मोक्षमार्गको ठीक ठीक जान लिया है।

शङ्करजीने कहा चित्तके निरोध हीका नाम योग है, सो केवल चित्तके निरोधसे चित्तकी शान्ति नहीं होती है, क्योंकि सुषुप्ति और मूर्च्छावस्यामें सब पुरुषोंका चित्त विरुद्ध होता है, जब उत्थानताको चित्त प्राप्त होता है, तब फिर अपने व्यवहारको ही करताहै शान्तिको नहीं प्राप्त होताहै और षट् चक्रोंके जाननेसे भी मोक्षका मार्ग नहीं जाना जाता है, क्योंकि श्रुति कहती है कि, श्रुतिवाक्यों करके आत्माका श्रवण करना चाहिये, और युक्तियों करके उसका मनन करना चाहिये, पश्चात् ध्यानको श्रुति कहती है, इन्हींको वेदमें मोक्षका मार्ग कहा है, मोक्षके प्रति साक्षात् कारणता आत्म-ज्ञानको ही कही है, परन्तु परम्परा करके साधनोंको भी मोक्षके प्रति कारणता कही है। श्रुति विरुद्ध तुम्हारा मत है,क्योंकि अज्ञान कृत जीवको बन्ध है उसकी निवृत्ति आत्मज्ञान करके हीं होती है। जैसे विना प्रकाशके अन्धकार दूर नहीं होता है, चाहे लक्षकर्म उपासनाको करता रहे, तैसे बिना आत्मज्ञानके मुक्ति नहीं होती है, चाहे लाखों बरस योगाऽभ्यास करता रहे। शङ्करजीके उपदेशोंको सुनकर योगवालोंने भी शङ्करजीसे आत्मज्ञानका उपदेश लिया।

फिर एक दिन नैयायिकने आकरके शङ्करजीसे कहा-माया जगत्का उपादान कारण नहीं है, किन्तु चारों भूतोंके जो परमाणु हैं, वह जगतका उपादान कारण हैं, और ईश्वर निमित्तकारण है, सृष्टयादिकालमें ईश्वरकी इच्छासे दो २

परमाणुवोंका संयोग होता है, तब द्वयणुक बनता है, फिर तीन तीन द्वयणुक मिलकर त्र्यणुक बनता है फिर चतुरणुकादि क्रमसे स्थूल जगत् उत्पन्न होता है, वे परमाणु निरवयव होते हैं। फिर प्रलयकालमें परमाणुवोंका प्रथम परस्पर विभाग होता है तब फिर द्वयणुकका नाश होता है। द्वयणुकके नाश होनेसे फिर त्र्यणुकका नाश होता है, फिर चतुरणुकका नाश होता है। इसी क्रमसे स्थूल जगतका नाश होता है, वे परमाणु चारों भूतोंके नित्य हैं, और आकाश भी नित्य है, कार्य, रूप स्थूल पृथ्व्यादिक अनित्य हैं, और दिग, काळ, आत्मा, मन, ये भी चार नित्य हैं और इक्कीस दुःखोंके ध्वंसका नाम ही मोक्ष है। जीवात्मा, ईश्वरात्मा, दोनों जड हैं, ज्ञान और चेतनता उनका धर्म है। सम्पूर्ण जीवात्मा व्यापक है, आत्ममनःसंयोगज्ञानके प्रति कारण है, सुषुप्ति अवस्थामें आत्ममनःसंयोग नहीं रहता है, क्योंकि मन उसकालमें पुरीतती नाडीमें प्रवेश करजाता है, और "द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्त पदार्थाः।" द्रव्य १ गुण २ कर्म ३ सामान्य ४ विशेष ५ समवाय ६ अभाव ७ ये सातही पदार्थ हैं। सम्पूर्ण जगत् इन सातहीं पदार्थोंके अन्तर्भूत है, ऐसा हमारा मत है। शंकरजीने कहा तुम्हारा मत सर्वथा वेदविरुद्ध है, और युक्तिसे भी विरुद्ध है, प्रथम तो परमाणुजगत्के कारणही नहीं होसक्ते हैं, क्योंकि, निरवयव परमाणुवोंका संयोग नहीं होसक्ता, सावयवोंका ही संयोग होता है, फिर यदि निरवयवोंका भी संयोग मानोगे तो संयोगकालमें एक परमाणु दूसरे परमाणुके भीतर जा रहेगा, उससे स्थूल द्वयणुककी उत्पत्ति नहीं होगी, इसी हेतुसे तुम्हारा परमाणुवाद असङ्गत है, और परमाणुओंकी सिद्धिमें कोई प्रमाण भी नहीं मिळता है, प्रमाणके अभाव होनेसे परमाणु नित्य भी साबित नहीं होसक्ते हैं, और आकाश, काल, दिक, तथा मन, ये चार भी नित्य साबित नहीं होसक्ते हैं, क्योंकि वेदमें इनकी उत्पत्ति लिखी है। " तस्मादाकाशः सम्भूतः" तिस परमात्मासे प्रथम आकाश उत्पन्न हुआ और काल नाम है, क्षण, मास, दिन वर्षका, सो सूर्य्यकी क्रियाके अधीन है। वह सूर्य्य भी उत्पत्तिवाला है, और दिग् भी सूर्य्य उदयके व्यवहारसे कही जाती है, वह भी सूर्य्यके आश्रित है, और मनकी भी श्रुतिमें

उत्पत्ति लिखी है। जो उत्पत्तिवाला पदार्थ होता है, वह अनित्यही होता है, ऐसा नियम है, इसीसे सिद्ध होता है कि, पृथ्व्यादिक सब द्रव्य अनित्य हैं, एक आत्मा ही नित्य है, और यह भी तुम्हारा कथन असंगत है, जो आत्मा जड है, और ज्ञान चेतनता उसका गुण है, क्योंकि "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्यादि श्रुतियें आत्माको सत्यरूप, ज्ञानरूप, अनन्तस्वरूप, कहती हैं, और जो तुमने कहा है आत्म और मनका संयोग ज्ञानमात्रके प्रति कारण है, और जीवात्मा सब व्यापक हैं, ऐसा भी आपका कथन नहीं बनता है, क्योंकि एकही शरीरमें सब आत्मा व्यापक होनेसे विद्यमान हैं और एक ही मनका सब आत्माके साथ संयोग भी है, तब सबको सर्वज्ञता होना चाहिये, सो तो नहीं है और जो तुमने कहा कि, सुषुप्तिकालमें मन पुरीतती नाडीके भीतर चला जाता है, इसी वास्ते कोई भी ज्ञान नहीं होता है, सो भी कथन ठीक नहीं है, हम पूछते हैं, पुरीतती नाडीके भीतर आत्मा है, या नहीं है, यदि कहो नहीं है, तो व्यापक सिद्ध नहीं होगा, यदि कहो है, तो सुषुप्ति सिद्ध नहीं होगी, क्योंकि आत्म और मनका संयोग वहाँ पर विद्यमान है, सब प्रकार के ज्ञान भी उस स्थलमें होवेंगे। अनेक युक्ती और प्रमाणोंसे परमाणुवाद असङ्गत है, अणुवादी भी सब शंकरजीके शिष्य बनगये।

फिर वहांसे शंकरजी काशीजीको चले आये, वहांपर जब रहते हुए शंकरजीको कुछ दिन बीते तो एक दिन चन्द्रमाके उपासक शंकरजीके पास आकर कहने लगे कि, सब तारोंमें चन्द्रमा उत्तम लिखा है, और पूर्णमासीके चन्द्रमाकी पूजा भी सब लोग करते हैं, और चन्द्रलोककी प्राप्तिका नाम ही मोक्ष है, इसलिये हमलोग चन्द्रमाकी उपासना करते हैं। शंकरजीने कहा जैसे यह पृथ्वी एकलोक है, तैसे चन्द्रमा भी एक लोक है। पृथ्वीसे भी बडा है, परन्तु दूरतः दोष छोटा सा दिखाता है। जैसे इस लोकमें कोई २ शुभ कर्मोंकरके राजा और धनी होकर सुखको भोक्ता है। तैसे उपासना करके जीवचन्द्रलोकमें जाकर दिव्य सुखको भोक्ता है। फिर इसी लोकमें आकर जन्म लेता है, इसीसे वह अनित्य सुख है। महाप्रलयमें चन्द्रमा भी नाशको प्राप्त होजाताहै, तो तन्निवासी कैसे रहसक्ते हैं फिर जैसे पृथ्वीलोक जड है,

तैसे चन्द्रलोक भी जड है, तुम्हारा मानना झूठा है, चन्द्रमाके उपासकोंने भी शंकरजीसे अद्वैत मतका उपदेश लिया।

फिर एक दिन कालवादीने आकर शंकरजीसे कहा कि, कालही ब्रह्म है, काल ही जगत्का कर्ता है, सब प्राणी कालहीके वशमें हैं, । काल पाकर उत्पन्न होते हैं और फिर हवाकर नाश को भी प्राप्त होजाते हैं, और जितने सत्यलोकसे आदि लेकर लोक हैं, वे भी सब कालके ही वशमें हैं, और ब्रह्मादिक देवता भी सब कालहीके अधीन है, इसी हेतुसे हम कालकी उपासना करते है । शङ्करजीने कहा जिसके वशमें प्राप्त होकर काल भी नाशको प्राप्त होजाता है, वही चेतन ब्रह्म जगत्का कर्ताहै काल कोई वस्तु नहीं है, समयका नाम है; वह नित्य ही नष्ट होता रहता है तुम्हारा यह भ्रमज्ञान है, इसको त्यागकर तुम यथार्थ ज्ञानको प्राप्त होवो, जबतक तुम यथार्थ ज्ञानको नहीं प्राप्त होवोगे, तबतक तुम्हारी मुक्ति कदापि नहीं होगी। शङ्करजीके उपदेशोंको सुनकर कालवादियोंने भी शंकरजीके मतको ग्रहण करलिया।

फिर एक दिन पितृलोकके उपासकोंने आकर शंकरजीसे कहा—हम पितृलोककी उपासना करते हैं क्योंकि, जो पुरुष पितृलोककी उपासना करता है, वह पितृलोकमें जाकर अन्तकालतक उस लोकमें विषयजन्य सुखोंको अनुभव करता है, और उसी पितृलोककी प्राप्तिहीका नाम मोक्ष है। शंकरजीने कहा—पितृलोक भी प्रलयकालमें नाशको प्राप्त होजाता है, और सृष्टिकालमें उत्पन्न होता है, तो पितृलोककी प्राप्तिका नाम मोक्ष कैसे होसक्ता है ? क्योंकि मोक्ष तो नित्य सुखका नाम है और पितृलोक जन्यसुख, सब अनित्य हैं; और जो उस लोकमें रहनेवाले पितर हैं, वे भी जन्म मरणवाले जीवही हैं। कभी वह कर्मोंकरके पितृलोकमें जाते हैं. और कर्मोंके फलको भोग कर फिर इसलोकमें आते है, कभी वह तुम्हारे पितर बनतेहैं, कभी तुम उनके पितर बनते हो, ऐसा चक्र चलाही जाता है।

इसी हेतुसे तुम पितरलोककी उपासना करनेसे कदापि मुक्त नहीं होसकेहो, तुम लोग भोगोंके लोभसे कुमार्गको जा रहेहो, ये भोग तो सब अधोगतिको

लेजानेवाले हैं, यदि तुमको अपनी कल्याणकी इच्छा हो तो अद्वैतवादका आश्रयण करो शंकरजीके वचनोंने पितरोंके उपासकोंके हृदयोंमें बडा असर किया और वह सब शंकरजीसे आत्मविद्याका उपदेश लेकर अद्वैतवादी बनगये।

फिर एक दिन शेष भगवान्‌के उपासकोंने आकर शङ्करजीसे कहा–हजार फणवाले जो शेषनागजी हैं, उनकी उपासना हम करते हैं, क्योंकि उनमें बडी शक्ति है, अपने एक फण के ऊपर उन्होंने राईके दानेकी तरह पृथ्वीको धारण किया है, और वह अपने भक्तोंको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ देते हैं, शङ्करजीने कहा–शेष नाम परमात्माका है, सारे जगत्‌के नाश होजानेपर जो शेष रहे, जिसका नाश कदापि न हो, उसीका नाम शेष है, हजार फणवाले सर्पका नाम शेष नहीं है, यदि तुम हजार फणवाले सर्पका नाम शेष मानकर उसीको पृथ्वीके तले पृथ्वीका उठानेवाला मानोगे तो पृथ्वीसे करोडों गुणा बडा उसका शरीरभी तुमको मानना पडेगा, क्योंकि जिसके एक फणपर राईके दाने बराबर होकर पृथ्वी रहेगी, वह अवश्य ही पृथ्वीसे करोडों गुणा बडा होगा, जो पृथ्वीसे करोडों गुणा बडा होगा, वह वजनमेंभी पृथ्वीसे करोडों गुणा होगा जो वस्तु जरासी भारी होती है, वह विना किसी आधारके रह नहीं सक्ती है, और बिना आधारके वह नीचे गिरजाती है, जैसे तुमने इतनी बडी पृथ्वी स्थिर रहनेके लिये, इतना बडा सर्प माना है, तैसेही तुमको इतने बडे सर्पके आधारके लिये कोई भी आश्रय मानना पडेगा तब उसके उठानेके लिये और किसीको मानना पडेगा अन्तमें कहोगे कि वह ईश्वरकी सत्तापर है, तब प्रथमही क्यों नहीं तुम पृथ्वीको ईश्वरकी सत्तापर मानलेते हो, इतना बडा मिथ्या भाषण क्यों करते हो। एक और भी दोष आवैगा, जब कि तुम सर्पको देहधारी मानोगे, तब उसके लिये नित्यप्रतिका भोजन भी अनन्त मनवाला प्रमाण मानना पडेगा, क्योंकि देहधारी बिना भोजनके जीही नहीं सक्ता है, और उसके नित्यप्रति भोजन का कहीं ठिकाना नहीं है, या तो वह बिना भोजनके मरजायगा, या धीरे २ पृथ्व्यादिक सब तारोंको खाजायगा, तब जगत्‌को खाकर फिर बिना भोजनके मरैगा। फिर वह हजार मुखसे नित्यही विष्णुकी स्तुति करता है तो भी उसको विष्णुके नामोंको अन्त नहीं मिलता है, ऐसा पुराणोंमें

लिखा है। इस लेखसे भी वह जीव ही साबित हुआ जो सर्व व्यापक है, उसीका नाम विष्णु है, वही ईश्वर है, उसका व्यापक निराकार ईश्वरकी उपासना करनेसे जीवका कल्याण होता है। इस लिये तुम मिथ्या शेषकी कल्पनाका त्याग करके सच्चिदानन्द रूप निराकार ब्रह्मकी उपासना करो शङ्करजीके वचनोंको श्रवण करके उन्होंने भी अद्वैतमतका आश्रयण करलिया।

फिर एक दिन गरुडके उपासक शङ्करजीसे आकर कहने लगे कि, हम लोग गरुडकी उपासना करते हैं क्योंकि गरुड भगवान्‌का वाहन और पार्षदभी है, उसकी उपासनाके विना कोई भी भगवान्‌के पास नहीं पहुँच सक्ता है, वही अपने भक्तोंको भगवान्‌के पास लेजाता है, जो गरुडकी उपासना नहीं करते हैं, वे वैकुण्ठमें नहीं जासक्ते हैं, इस लिये सर्व पुरुषोंको गरुडकी उपासना करना उचित है। शङ्करजीने कहा तुम विचारहीन हो, भगवान् नाम सर्वव्यापक परमेश्वरका है; उसका कोई विशेष लोक नहीं है, क्योंकि, जो मूर्त्तिमान् देहधारी जीव होता है, उसीका कोई लोक होजाता है, जो मूर्त्तिरहित है, निराकार परिपूर्ण है, सभी लोक उसीके हैं, वे तो तुम्हारे भीतर बाहर सर्वत्र विद्यमान हैं, उसके पास जानेके लिये पक्षीकी उपासना करना इससे बढकर और क्या मूर्खता होगी, फिर वही भगवान् तुम्हारा आत्मा है, तुम अपने आत्माको विसार करके पक्षीकी उपासना करते हो, तुम्हारे इतना भी ज्ञान नहीं कि अपनेसे उत्तमकी उपासना करनेसे उत्तम फल मिलता है, अपनेसे निकृष्टकी उपासना करनेसे निकृष्ट ही फल मिलता है, तुम अज्ञान निद्रासे जागे हो शङ्करजीके उपदेशसे उन्होंने गरुडकी उपासनाका त्याग करके निराकारकी उपासनाको स्वीकार करलिया।

फिर एक दिन तुलसीके उपासक शङ्करजीसे आकर कहने लगे कि, हम तुलसीकी उपासना करते हैं, क्योंकि तुलसीका माहात्म्य पुराणोंमें बहुत लिखा है। शंकरजीने कहा तुलसी भी एक बनका वृक्ष है, विशेष ज्ञानादिकोंसे शून्य है, उसकी उपासना करनेसे तुमको वही योनि मिलेगी, क्योंकि ऐसा नियम है, जो जिसकी उपासना करता है, वह उसीको प्राप्त होता है, जो तुलसीकी उपासना करेगा, वह तुलसी योनिको प्राप्त होगा, पीपल वैर वगैरह वृक्षोंकी

उपासना करेगा, वह जो पीपल बेर वगैरह वृक्षोंकी योनियोंमें जायगा, और पुराणोंमें जो इनका माहात्म्य लिखा है, सो उसका तात्पर्य अपने अर्थमें नहीं है, किन्तु शरीरकी आरोग्यतामें है, क्योंकि, जहांपर तुलसीका वृक्ष होता है, वहां की वायु शुद्ध होती है, और सवेरे पीपल और बेरके वृक्ष स्वासोंको छोडते हैं, उनके पास जानेसे शरीरमें जब कि उनके स्वास प्रवेश करते बल बढता है, और प्रदक्षिणा लेनेसे अन्न हजम होता है, तब माहात्म्य परलोक लिखने वालोंका असली तात्पर्य यही है, जो हमने कहा है, कुछ सम्बन्धी फल नहीं है । शङ्करजीके वाक्योंको सुनकर तुलसी वगैरह वृक्षोंके उपासकों-नेभी निर्गुण चेतनकी उपासना अङ्गीकार करली ।

फिर एक दिन गोरखनाथ मतानुयायी कनफटे शङ्करजीके पास आकर कहने लगे कि, कान फडाकर मुद्रा पहिरनेसे पुरुष योगी बन जाता है, और भैरवकी उपासना करनेसे सब सिद्धियें प्राप्त होजाती हैं, और मांस मदिराकी बलिसे भैरव प्रसन्न होकर पुरुषके वशमें होजाता है, उसके वशमें होनेसे पुरुष मारण, मोहन, उच्चाटनादि तन्त्रोंको भी करसक्ता है, और मानप्रतिष्ठा भी पुरुष-की होती है । शङ्करजीने कहा—योगमत तो वेद सम्मत है । परन्तु उस योगको तुम नहीं जानते हो, गोरखनाथजी योगिराज हुए हैं । जैसा कि तुम्हारा मत है, ऐसा मत गोरखनाथजीका नहीं है, उनका मत चित्तकी वृत्तिका निरोधरूप योग था, फिर उनके बनाये हुए जो योगके ग्रन्थ हैं, उनमें मांस, मदिराका निषेध किया है, बल्कि उनके सेवनवालेको पतित लिखा है, और काली, भैरवा-दिकोंकी उपासनाका भी लेख उनके किसी ग्रन्थमें नहीं है । केवल शुद्ध ब्रह्ममें चित्त लगानेका नाम उन्होंने योग कहा है । फिर कानको फाडना या फड़वा-कर योगी बनना बनाना उनके ग्रन्थमें कहीं भी नहीं लिखा है, इसीसे जाना जाता है कि, कानोंका फाडना उनसे पीछे उनके किसी शिष्यने चलाया है, और यदि कानोंका फाडना उन्होंने चलाया भी तो उनका यह तात्पर्य जानप-डता है कि, योग करना कठिन है, कहीं उकताकर फिर घरमें न जा घुसे घरमें घुसनेसे पतित होजायगा । इसलिये उन्होंने कानोंको फाडदिया कि, योग ही में लगा रहे । कान फड़वानेसे पुरुष अंगहीन होजाताहै, कर्मोंमें उसका अधिकार

नहीं रहता है, तुम लोगोंने भ्रष्टाचार करके योगको कलंकित करदिया है, सिद्धियोंके लोभसे व्यापक चेतनकी उपासना छोड कर भैरवादिकोंकी उपासनामें तुमने अपना जन्म ही व्यर्थ खोदिया है, अब भी तुम इस भ्रष्टाचारका त्याग करके यदि चित्तकी शुद्धिके लिये मनके निरोधरूप योगको अथवा ज्ञानके साधन जो श्रवण मननादिक हैं, उनको करोगे तो तुम्हारा कल्याण होजायगा। शंकरजीके उपदेशको सुनकर उन्होंने भी अद्वैतमतको आश्रयण करलिया।

फिर एक दिन कापालिमतका अघोरी शङ्करजीके पास आकर कहने लगा कि, हमारा मत अघोरी है, हम किसी भी पदार्थको अपवित्र नहीं जानते हैं, किन्तु सब पदार्थोंको हम भक्षण करजाते हैं। जातिपाँतिको भी हम नहीं मानते हैं, संसारमें नर नारी दो जाति है, जब दोनों परस्पर मिलकर भोग करते हैं, तब एक अद्भुत आनन्द उत्पन्न होता है, और दोनोंके सम्बन्धसे आगे सृष्टि भी उत्पन्न होती है, और जो पुरुष ऐसा हठ करता है कि, यह स्त्री मेरी है, यह पराई है, वह मूर्ख है, उसको कदापि सुख नहीं होता है, गम्याऽगम्य विभागको भी हम नहीं मानते हैं, स्त्रीमात्र पुरुषका भोग है, पशुमात्र पुरुषका खाद्य है, और स्त्रीके संसर्गसे जो आनन्द उत्पन्न होता है, वही मोक्ष सुख कहाता है। जैसे नदी समुद्रमें मिलकर फिर हटकर नहीं आती है, तैसे यह जीव भी मरकर भैरवमें मिलजाता है, बारंबार जन्मता मरता भी नहीं है, और जितनी क्रियायें हैं, वे सब झूठी हैं। शंकरजीने कहा—तुम्हारा मत भी श्रुति और युक्तिसे विरुद्ध है। सो दिखाते है, तुमने कहा कि, नर नारी दो जाति है, सो ठीक नहीं है, क्योंकि मनुष्यत्व पशुत्वादि भी अनेक जातियें हैं, और यदि यह मेरी स्त्री है, यह पराई, ऐसा भेद नहीं माना जायगा तो सब जगत् परस्पर लडकर मरजायेगा। क्योंकि जब एकही कालमें अनेक पुरुष एकही स्त्रीको भोगना चाहेंगे, तब परस्पर कामाग्नि करके दग्ध हुए सभी लडकर मरजायँगे, एकको भी भोगका सुख नहीं मिलेगा और संसारमें जो रोगी और दुःखी, दिखाते हैं, वह सब गम्याऽगम्यके ही फलको भोगतेहैं, और स्त्रीके संगसे जन्य जो सुख है, वह क्षणिक है, और अत्यन्त दुःखका हेतु है, मोक्ष सुख जो है, सो नित्य है, उसका नाश कदापि नहीं होता है, और ब्रह्मचर्य्यादिक साधनोंसे मिलता है, और जो राक्षस कहे-

जाते हैं, वही सर्वजीवोंके मांसको खाते हैं, मनुष्य सर्वभक्षी नहीं होते हैं, तुम्हारा मत अत्यन्त भ्रष्ट है । नीच जातिवाले भी इसको सुनकर तुमसे घृणा करते हैं, इस लिये तुमको उचित है कि, ऐसे नीच मतको छोडदो, क्योंकि अन्त्यजादिक भी ऐसे मतवालेकी निन्दा करते हैं । शंकरजीके उपदेशोंने उसके मनमें बडा असर किया, तब उसने शंकरजीसे कहा—मुझको सत्यमार्गका उपदेश करिये । शंकरजीने उसको प्रायश्चित्त कराकर फिरसे उसके संस्कारोंको कराकर उसको अद्वैतमतका उपदेश किया वह भी अद्वैतवादी बनगया ।

फिर एक दिन गन्धर्वोंके उपासकोंने शङ्करजीसे आकर कहा कि, गन्धर्वोंकी उपासनासे नादका ज्ञान होता है, और नादके ज्ञानसे ही पुरुषको मुक्ति होती है, नाद नाम शब्दका है, और शब्दको ही ब्रह्मरूप करके मानाहै, क्योंकि जगत्की उत्पत्ति और वेदकी उत्पत्ति भी शब्दसे ही हुई है, ओंकार एक शब्दही है और शब्दके श्रवणसे सबसे अधिक सुख होताहै, और योगीजन भी अनहदशब्दका ही ध्यान करते हैं, इसलिये हम शब्दकी उपासना करते हैं । शंकरजीने कहा—गन्धर्वलोग स्वर्गके गवैया हैं । देवतोंको अपने गायन करके प्रसन्न करते हैं, पराधीन जीव हैं, उनकी उपासनासे तुमको भी वैसा ही पराधीन गवैया बनना पडेगा, और शब्द सूक्ष्म तन्मात्रा आकाशका कारण उत्पत्तिवाला है और आकाशसे फिर स्थूल शब्द उत्पन्न होता है, नाशी है, और पांचों विषयोंके मध्यमें शब्द भी एक विषय है । श्रोत्र इन्द्रिय करके इसका ग्रहण होता है, वह ब्रह्म कदापि नहीं होसकता है, और न वह मुक्तिका कारण है, इस विषयको भी बन्धनका हेतु लिखा है, मृग सुन्दर रागके सुननेही से बन्धायमान होजाता है, इस लिये तुम्हारा मत भी तुच्छ है, और श्रुति युक्तिसे विरुद्ध है । शंकरजीके मतको उन्होंने भी स्वीकार करलिया ।

फिर एक दिन भूत प्रेतोंके उपासकोंने आकर कहा कि, हम लोग भूत प्रेतोंकी उपासना करते हैं, क्योंकि भूत प्रेतोंकी प्रसन्नतासे मारण, मोहन, उच्चाटनादि सिद्धियें हमको मिलती हैं । शंकरजीने कहा गीतामें लिखा है "भूतानि यान्ति भूतेज्याः ।" भूत प्रेतोंके उपासक मर करके भूत प्रेत योनिको ही प्राप्त होते हैं, तुम लोग भूत प्रेत ही बनोगे, कभी भी तुम्हारी गति नहीं

होगी। यदि तुम इस निन्दित उपासनाका त्यागकरके शुद्ध चेतनकी उपासना करोगे तो तुम्हारी गति होगी। शंकरजीके उपदेशको उन्होंनेभी ग्रहण करलिया।

फिर वहांसे उठकर शंकरजी पश्चिम समुद्रके किनारे पर गये। वहांपर समुद्रके उपासकोंसे शंकरजीकी भेट हुई, उन्होंने कहा कि, हम समुद्रकी उपासना करते हैं, क्योंकि समुद्र ही सब रत्नोंकी खान है, और समुद्रके मथन करनेसे चौदह रत्न भी निकले हैं। शंकरजीने कहा—समुद्र तो जड है, समुद्रको कोई भी ज्ञान नहीं है, वह तुम्हारा भला क्या कर सकता है, समुद्रकी उपासना करनेसे तुम भी समुद्रके ही जीव बनोगे, यह तुम्हारा अज्ञान है, जो व्यापक चेतनकी उपासना छोडकर तुम जड जलकी उपासना करते हो, जिसको प्रथम देवतोंने मथन किया, फिर अगस्त्यने पान करके मूत दिया था उसकी उपासना करते हो. इससे बढकर और क्या अज्ञान होगा। शंकरजीके उपदेशोंको सुनकर उन्होंने भी अद्वैतवादको स्वीकार करलिया।

फिर शंकरजी गोकर्णनाथ महादेवजीकी तरफ चले गये। उस स्थानमें नीलकण्ठ नाम करके एक शिवका उपासक बडाभारी भेदवादी रहता था, उसने बहुतसे ग्रन्थ भेदवादके बनाये थे, और शिवहीको उसने ईश्वर साबित कर रक्खा था। शंकरजीके आगमनको श्रवण करके शिष्योंके सहित वह नीलकण्ठ शंकरजीके पास आया, अद्वैत मतका खण्डन और द्वैत मतका मण्डन करना उसने प्रारंभ कर दिया। और प्रथमही उसने कहा कि जीव अल्प है, ईश्वर सर्वज्ञ है, इनका अभेद कदापि नहीं होसक्ता है, क्योंकि समान धर्मोंवालोंकी एकता होसक्ती है, विरुद्ध धर्मवालोंकी एकता नहीं होसक्ती है, और एकतामें बिंब प्रतिबिंबका दृष्टांत भी नहीं बनता है, क्योंकि, दर्पणमें जो प्रतिबिंब है वह मिथ्या है, और दर्पण भी मिथ्या है, उस मिथ्या प्रतिबिंबकी एकता अपने बिंबके साथ जैसे नहीं होसक्ती है, तैसे अंतःकरणमें जो चेतना प्रतिबिंब है वह भी मिथ्या है, तिसकी भी एकता नहीं होसक्ती है और प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी जीवोंका परस्पर भेदही सिद्ध होता है यदि प्रत्यक्ष भेद ज्ञानीकी दृष्टिमें नहीं है तो फिर सबके साथ खानपान आदि व्यवहारको क्यों नहीं करलेता है। शङ्करजी कहते हैं कि परमार्थ दृष्टिको लेकर तो

जीवमात्र ईश्वररूप है, परन्तु व्यवहार दृष्टिको लेकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिक देवता सब जीव कोटिमें हैं, यदि ऐसा न मानोगे तो अनेक ईश्वर सिद्ध होजायँगे, क्योंकि, जैसे शिवके उपासक शिवको ईश्वर मानते हैं, तैसेही विष्णुके उपासक भी विष्णुको ईश्वर मानते हैं, इसी तरह और देवतोंके उपासक भी अपने २ देवताको ईश्वर मानतेहैं। तब अनेक ईश्वर सिद्ध होजायँगे; अनेक ईश्वर तो नहीं होसक्ते हैं। क्योंकि, वेदमें एकही ईश्वर लिखा है "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा" अर्थात् एक जो देव परमात्मा है, वह सम्पूर्ण भूतोंमें छिपा हुआ स्थित है, सर्वव्यापी है, संपूर्ण भूतोंका अन्तरात्मा है। "न तस्य कार्यं करणं च विद्यते" उस परमात्माका न कोई कार्य याने शरीर है और न करण अर्थात् इन्द्रिय है। इस तरहके अनेक श्रुतिवाक्य व्यापक, चेतन शरीर इन्द्रियोंसे रहितको ही ईश्वर चाहते हैं, शिवादिक सब शरीरेन्द्रियवालेहुए हैं, इसलिये यह सब देवता जीवकोटिमें हैं, यदि ऐसा नहीं मानोगे तो प्रत्येक देवता ईश्वर होनेसे परस्पर युद्ध करेंगे, एक तो कहेगा कि मैं इस कालमें जगत्को रचना करताहूँ, दूसरा कहेगा मैं प्रलयको करता हूँ, तब कोई भी जगत्का व्यवहार सिद्ध नहीं होगा और प्रतिबिंब जो होता है सो अपने बिंबसे भिन्न नहीं होता है, जड़का प्रतिबिंब भी जड़ होता है और चेतनका प्रतिबिंब भी चेतन ही होता है, जैसे जलके सूखजानेसे सूर्य्यका प्रतिबिंब सूर्य्यही लय होजाताहै, नष्ट नहीं होता हैं, तैसे अंतःकरणरूपी उपाधिके नाश होजानेसे चेतन व्यापकका प्रतिबिंबभी चेतनमेंही लय होजाता है, फिर जीवात्मा चेतन भी निरवयव है, ईश्वरात्माकी तरह तब निरवयवका विना उपाधिके भेद बन नहीं सक्ताहै, उपाधिकृत जैसे आकाशका भेद है वास्तव भेद नहीं है, वास्तवसे आकाश एकही है, तैसे ही उपाधिकृत्य निरवयव व्यापक आत्माका भी भेदहै, वास्तवमें भेद नहीं है इसी अर्थको श्रुति भी कहती है "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" अर्थात् संपूर्ण जगत् ब्रह्मरूप हीं है, और जो तुमने कहा है कि विद्वान् एक आत्माको जानकर सबके साथ क्यों नहीं खाता पीता है, सो ऐसा कथन भी आपका असंगत है, क्योंकि जानना धर्म मनका है और खाना धर्म शरीरका है, जाननेका यह अर्थ है, जीवमात्रमें एक ही आत्माको निश्चय करलेना, न कि सबके साथ खालेना अर्थ है और

न सबके साथ खालेनेका विद्वान्‌को निश्चय ही है, फिर वह सबके साथ कैसे खान पानादि व्यवहारको करै। यदि सबका जूठा खानेसे ज्ञानी बनता हो तब कूकर, सूकर, भंगी आदिकोंको भी ज्ञानी कहना चाहिये, कहता तो कोई भी नहीं है। इस लिये सबमें एक आत्माको जाननेवालेका नाम ही ज्ञानी है। और तत्त्वमस्यादि जो महा वाक्य है सो तत् पदका वाच्यार्थ जो सर्वज्ञतादिक गुणों करके विशिष्ट ईश्वर चेतन और त्वं पदका वाच्यार्थ जो अल्पज्ञतादि गुणोंकरके युक्त जीव चेतन हैं और तत् पदका लक्ष्यार्थ जो शुद्ध चेतन है और त्वं पदका लक्ष्यार्थ जो शुद्धचेतन है, सो भागत्याग लक्षणा करके श्रुतिवाच्यार्थमें विरोधी भागोंका त्याग करके केवल लक्ष्यार्थकी एकताको कहता है, जीवकी उपाधि अंतःकरण है ईश्वरकी उपाधि माया है, दोनों उपाधियोंके त्याग देनेसे जीव ईश्वरकी एकतामें कोई भी विरोध नहीं आता है, जैसे रज्जुमें सर्प भ्रम करके प्रतीत होता है तैसे आत्मामें कर्तृत्वादिक भी भ्रम करके प्रतीत होते हैं, जैसे देहादिकोंको तुम जड और मिथ्या मानते हो तैसे हम भी इनको जड और मिथ्या मानते है, निरवयव चेतनका भेद किसी प्रकारसे भी नहीं बनता है और अल्पज्ञता तथा सर्वज्ञता यह दोनों धर्म उपाधिमें ही रहते हैं चेतनमें नहीं रहते हैं, चेतन हमेशा एक रस ज्योंका त्यों ही रहता है ऐसा ही वेदका तात्पर्य है, जैसे रक्त पुष्पके पास रखाहुआ स्फटिक भी रक्तप्रतीत होता है और पुष्परूपी उपाधिके हटानेसे फिर वह रक्त प्रतीत नहीं होता है, तैसे ही अंतःकरणरूपी उपाधिके सम्बन्धसे आत्मामें कर्तृत्वादिक प्रतीत होते हैं, वास्तवमें आत्मा शुद्ध है, क्योंकि मोक्ष अवस्थामें जब अंतःकरणादि नष्ट होजाते हैं, तब कर्तृत्वादि धर्म भी धर्मीके साथ ही नष्ट होजाते हैं, उसकालमें आत्मा अपने मुख्य स्वरूपमें स्थित होजाताहै, शङ्करजी कहते हैं कि, यदि भेद ही सत्य होता तो वेद भेदकी निंदा न करता और भेदवादकी निंदाको वेद करता है "द्वितीयाद्वै भयं भवति" अर्थात् दूसरेसे ही भय होता है। "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" अर्थात् जो पुरुष एक चेतनमें भेदबुद्धि करके नाना देखता है, वह मृत्युसे भी मृत्युको प्राप्त होता है, अर्थात् बार बार जन्मता मरता ही रहता है।

फिर नीलकंठ कहता है, कि यदि सब शरीरोंमें एक ही आत्मा है एकको सुख होनेसे सबको ही सुख होना चाहिये और एकको दुःख होनेसे सबको ही दुःख होना चाहिये । ऐसा तो देखनेमें नहीं आता है, इसीसे जाना जाता है कि, सब शरीरोंमें आत्मा एक नहीं है किंतु भिन्न भिन्न है । और यदि अंतःकरणको कर्ता और आत्माको अकर्ता मानोगे तब कर्मका करनेवाला एक होगा और फलका भोगनेवाला दूसरा होगा । तब तो युक्तीसे और वेदसे भी विरुद्ध आपका कथन होगा, जो कर्ता होता है, वही भोक्ता भी होता है, इन्हीं युक्तियोंसे भेद ही साबित होता है, अभेद साबित नहीं होता है, ।

शङ्करजी कहते हैं कि, हे नीलकंठ ! तुम्हारा कथन असंगत है, क्योंकि सुख दुःखादिक सब मनके ही धर्म नहीं हैं, यदि आत्माके धर्म होते तो सुषुप्ति, मूर्च्छा आदिकोंमें भी सुख दुःखादिक बने रहते, क्योंकि धर्माधर्मका नित्य सम्बन्ध है, धर्मोको छोडकर धर्मी कदापि नहीं रहसक्ता है जैसे उष्णतादिकोंको छोडकर अग्नि नहीं रहसक्ता है, इत्यादि युक्तियोंसे सिद्ध होता है, कि सुखादिक सब मनके ही धर्म है, और सुषुप्ति आदिकोंमें मन अपने कारणमें लीन हो जाता है, इस लिये सुखादिकोंका ज्ञान भी नहीं होता है, यदि कहो मन जड है, जड कर्ता कैसे होसक्ता है, इसका उत्तर यह है कि, अन्तःकरणके साथ मनका कल्पित अनादिकालका अध्यास चलाआता है, उस अध्यासकरके धर्मोका व्यत्यय होरहा है, जैसे अग्निमें लोहेका पिंड डालनेसे जब वह अग्निके साथ अध्यास करके अग्निरूप होजाता है, तब लोग कहते है, कि, लोहा जलाता है, अब यहां पर जलाना धर्म लोहेका नहीं है, यदि लोहेका होता तब अग्निके संयोगसे पहिले भी जलाता और गोलाकार धर्म अग्निका नहीं है, क्योंकि लोहपिंडके साथ संयोग होनेसे पहिले गोलाकारता अग्निमें नहीं थी, जैसे अध्यास करके लोहेके धर्म अग्निमें और अग्निके धर्म- लोहेमें चले जाते हैं, तैसे अंतःकरणके साथ आत्माका अध्यास होनेसे चेतनतादि धर्म आत्माके अन्तःकरणमें चलेआते है, और कर्तृत्वादिक धर्म अन्तःकरणके आत्मामें प्रतीत होनेलगते हैं, इसी हेतुसे धर्मोका संकर भी नहीं होता है, जो कर्ता है, वह भोक्ता भी साबित होता है, क्योंकि अन्तःकरणविशिष्ट चेतनका

ही नाम जीव है, सो जो जीव कर्ता है, वह भोक्ता वास्तवमें आत्मनिर्धर्मिक है, क्योंकि श्रतियोंमें आत्माको असंग और शुद्ध लिखा है. और जितना कि, विषय ज य सुख है, वह दुःखसे मिला हुआ है, और जिसमें दुःखका लेशमात्र भी नहीं वह नित्य सुख है, उसीको मुक्तिका भी सुख कहते हैं, शङ्करजीसे युक्ति और प्रमाणोंके सहित द्वैत मतका खंडन और अद्वैत मतका मंडन सुनकर नीलकंठ भी शंकरजीका शिष्य बनगया।

वहाँसे फिर शंकरजी द्वारकापुरीमें गये, द्वारकामें चक्रांकित पंचरात्र मतानुयायी बहुत रहते थे, शंकरजीके आगमनको सुनकर शङ्करजीके पास आकर कहनेलगे कि, हमारा मत वेदसंमत है और पांच प्रकारका जो भेद है, सो नित्य है। जीव ईश्वरका भेद १ जीव जीवका भेद २ जीव जडका भेद ३, जडसे ईश्वरका भेद ४, चेतनका परस्पर भेद ५। शङ्करजीने कहा तुम्हारा मत वेदविरुद्ध है, क्योंकि, वेदमें कहीं भी पांच प्रकारका भेद नहीं लिखा है, और युक्तियोंसे भी पांच प्रकारका भेद सिद्ध नहीं होता है, प्रथम तो निराकार चेतनका भेद बिना उपाधिके बनही नहीं सक्ता है, फिर उस उपाधिके अनित्य होनेसे वह भेद भी अनित्य है और जितना कि, जडपदार्थ है, सो सब कल्पित है, अर्थात् मिथ्या है,केवल चेतन ही एक नित्य है और बाहरके चिह्न कल्याणकारक नहीं होसक्ते हैं, जब अनेक प्रकारकी युक्ति और प्रमाणोंसे शङ्करजीने उनको समझाया तब वह भी अद्वैतवादी बनगये।

वहाँसे चलकर शंकरजी फिर उज्जैन पुरीमें आये, वहाँपर भट्टभास्कर नाम करके एक बडाभारी पंडित रहता था, उसने जब सुना कि शङ्कर नामक एक बडेभारी पंडित संन्यासी आये हैं, तब वह शास्त्रार्थ करनेको शङ्करजीके पास आया और दोनोंका परस्पर शास्त्रार्थ होनेलगा, बहुत युक्ति और प्रमाणोंको कह भट्टपाद द्वैतको साबित करता और शंकरजी अद्वैतको साबित करते थे, जब कि, जीव ईश्वरके अभेदमें शंकरजीकी कोटि प्रबल पडगई तब भट्टपादने कहा कि जिस प्रकृतिको तुम जीव ईश्वरके भेदका कारण बताते हो और वास्तवमें अद्वैतको सिद्ध करते हो, वह प्रकृति जीवनिष्ठ रहती है, वा ईश्वरनिष्ठ रहती है, अथवा उभयनिष्ठ रहती है; तीनों पक्षोंमेसे किसी पक्षमें

भी प्रकृति भेदक नहीं होसक्ती है, शंकरजी कहते है, कि दर्पणमें जो मुखका प्रतिबिंब पडता है, वहाँपर बिंब प्रतिबिंबके भेदको तुम भी मानते हो और दर्पण-रूपी उपाधिसे विना बिंब प्रतिबिंबका भेद हो भी नहीं सक्ता है, अब यहाँपर बिंब प्रतिबिंबका भेदक जो दर्पण है, सो बताओ कि, बिंबके आश्रित है, वा प्रतिबिंबके आश्रित है अथवा दोनोंके आश्रित है ? जैसे दर्पण दोनोंसे अलग भी है, और दोनोंका भेद भेदक भी है और जैसे मिथ्या दर्पणके फूट जानेसे प्रतिबिंब अपने बिंबमें लय होजाता है, तैसें जीव ईश्वरका भेदक जो मिथ्या उपाधि तिसके नाश होजानेसे जीव भी ईश्वरमें मिल जाता है, और चेत-नत्वेन दोनों चेतन एक हैं इस लिये वह प्रकृति चेतनके ही आश्रित रहती है और चेतनके भेदको भी करदेती है, जैसे घटमठादिक उपाधियां आकाशमें रहतीं और आकाशकी भेदक भी हैं । यदि तुम ऐसा कहो कि, जीवको ही सुख दुःख होता है, ईश्वरको क्यों नहीं होता, तब हम कहते हैं किं, ईश्वरकी उपाधि माया शुद्ध है इसवास्ते ईश्वरको अपने स्वरूपका ज्ञान सर्वदा काल बनारहता है, अतएव ईश्वरको सुख दुःख नहीं होता है, जीवकी उपाधि मलिन है, इसवास्ते जीवको अपने स्वरूपका ज्ञान नहीं होताहै, इसीवास्ते जीवको ही सुख दुःखका ज्ञान होता है, प्रकृति विकारी है, चेतन विकारसे रहित है, प्रकृति अनित्य है, चेतन नित्य है, जैसे शुक्तिके अज्ञानसे रजतकी प्रतीति होती है, और शुक्तिके ज्ञानसे रजतकी निवृत्ति होजाती है, तैसे आत्माके अज्ञानसे जीवपना प्रतीत होता है, आत्माके ज्ञानसे जीवपना भी नहीं रहताहै । फिर शंकरजी कहते हैं कि जैसे द्रव्यदृष्टि करके घटपटादिक सब एकही हैं और व्यक्ति दृष्टि करके सब भिन्न २ है, एकही मृत्तिकामें जैसे भ्रम करके घटपटादि अनेक बुद्धियाँ होरही है, इसी प्रकार चेतनमें भ्रम करके अनेक बुद्धियां होरही है, वास्तवमें चेतन एकही है, अहं ब्रह्म यह बुद्धि सत्य है, देहबुद्धि भ्रम है । भास्कर भी शंकरजीसे पराजित होकर शंकरजीका शिष्य बनगया ।

फिर वहाँसे शंकरजी बाह्लीक देशको चलेगये । वहाँपर अर्हत मतके लोग बहुतसे रहते थे, शंकरजीके आगमनको सुनकर वह सब शंकरजीके साथ शास्त्रार्थ करनेको आये और कहने लगे कि जैनमतही सब मतोंमें उत्तम मतहै ।

शंकरजीने कहा कि तुम अपने मतका निरूपण करो। उन्होंने कहा कि हमारे मतमें पांच अस्तिकाय है। उनमेंसे १ जीव काय है, बद्ध मुक्त और सिद्ध इन भेदों करके तीन भेद जीव कायके है, अर्हत भगवान् नित्य सिद्ध हैं और मुक्तरूप हैं, और दूसरे वह जीव है, जिन्होंने साधनों करके मुक्तिको पाया है, तीसरे जीव सब बद्ध हैं। यह तीन भेद जीवकायके हैं। दूसरा पुद्गलकाय है, पुद्गल नाम परमाणुवोंका है और आकाश एक शून्य पदार्थ है, तीसरा धर्म-काय है और चौथा अधर्म काय है, पांचवां व्योमकाय है, और व्योमके दो भेद हैं, एक तो लोकाऽकाश दूसरा अलोकाऽकाश है, लोकाकाश उस आका-शको कहते हैं, जिसमें कि, सारा जगत् है, और अलोकाकाश उसको कहते हैं कि जिसमें सब मुक्त पुरुष ही रहते हैं, और इन्द्रियोंके द्वारका नाम आसव है, वही इन्द्रिय जीवको विषयोंकी तरफ लेजाते हैं, इन्द्रियोंका विषयोंकी तरफ जो प्रवाह है, उसके रोकनेका नाम संवर है, पुण्य और पाप रूपी कलुषताको नाश करनेवाला है। उसीका नाम जर है, और तप्त शिलाके ऊपर आरूढ होनेका नामही धर्म है, और आठ प्रकारका कर्म है, चार तो घातक कर्म हैं, और चार अघातक कर्म हैं, और जो ज्ञानमुक्ति साधन नहीं है, उसीका नाम अज्ञान है, और अर्हत [illegible] करके जिसने मुक्तिको नहीं पाया है, उसका नाम शास्त्रावरण है, और मुक्तिमार्गका जिसको बोध नहीं है, उसीका नाम मोहनीय है, ज्ञानके विघ्नका नाम अन्तराय है, इन्हीं चार कर्मोंका नाम घातक है, जिस कर्मके करनेसे आत्माका ज्ञान होता है, उसका नाम वेदनीय है। यह मेरा नाम है, ऐसा जो अभिमान है, इसका नाम नासिक कर्म है, बडे कुलमें उत्पन्न होनेका जो अभिमान है, इसका नाम गोत्रिक संज्ञक कर्म है, जो शरीरका निर्वाहककर्म है, उसका नाम आयुष्ककर्म है, यही आठ प्रकारके कर्म पुरुषके बन्धके हेतु है, इसलिये इन्हींका नाम बन्ध है। और जो आवरणसे रहित होकर विज्ञानके सहित अलोकाकाशमें निवास करना है, उसीका नाम मुक्ति है, धर्माऽधर्मके सम्बन्धसे छूटकर अलोकाकाशमें आनन्दसे रहता है, और आगे-वाले सात पदार्थोंका नाम सप्तभंग भी है। अस्ति १ नास्ति २ अस्तिनास्ति ३ अवक्तव्य ४ अस्तिवक्तव्य ५ नास्तिवक्तव्य ६ अस्ति नास्तिवक्तव्य ७ इन्हीं सातों

का नाम सप्तभंग है। जीव १ अजीव २ आस्रव ३ संवर ४ निर्जर ५ बन्ध ६ मोक्ष ७ इन्हीं सात पदार्थोंके साथ पूर्ववाले सप्तभंग रहते हैं, और शरीरके प्रमाणके बराबर ही जीवका प्रमाण भी है, अर्थात् जितना बडा शरीर है, उतनाही बडा जीव है, वह जीव आठ प्रकारके कर्मोंकरके लपेटा हुआ है। शंकरजी कहते हैं, कि, तुम्हारा मत युक्तिको नहीं सम्हारता है, इसलिये असंगत है, क्योंकि शरीरके बराबर परमाणुवाला तुमने जीव माना है, वह जीव जब हाथीके शरीरमें जायगा,तब उसके किसी एक अंगमें ही रहजायगा, जब मच्छरके शरीरमें जायगा तब थोडासा मच्छरके शरीरमें रहेगा, वाकीका वाहरही लटकता रहेगा किन्तु सारे शरीरमें व्यापक होकर नहीं रहैगा, और सारे शरीरमें जीवको व्यापक ही देखते हैं, यदि कहो वडे शरीरमें जानेसे उसके अवयव बढजायँगे और छोटे शरीरमें जानेसे उसके अवयव कमती होजायँगे तब तो जीव नाशी होजायगा, और जीवको तुम नाशी नहीं मानते हो, और जो जडपदार्थ होता है, वही वृद्धिक्षयवाला होता है, चेतनपदार्थ वृद्धिक्षयवाला नहीं होता है, और जो तुम कहो उसके अवयव भी सब चेतन हैं, जैसे एक रथको बहुतसे घोडे लेजाते हैं, तैसे एक शरीरको भी बहुतसे, चेतन अवयव लेजायँगे, सो यह वार्ता भी युक्तिसे विरुद्ध है, एक शरीरमें अनेक चेतन होनेसे उनकी एक सम्मति भी नहीं होगी, तब शरीर भी उन्मथन होजायगा, और कृताऽकृताऽभ्यागमदोष भी आवैंगे, और जो तुमने जीवके गलेमें आठ प्रकारका बन्ध डाला है, उस बन्धसे जीवका ऊर्द्ध्वगमन भी नहीं बनैगा, क्योंकि अवयवोंके नाश होनेसे जीव तो तुम्हारे मतमें नाशी होजायगा, तब ऊर्द्ध्वगमन कौन करैगा? और तुम्हारा सप्तभङ्गीन्यायभी ठीक नहीं है, क्योंकि एकही पदार्थमें, एकही कालमें अस्ति है, नास्ति नहीं है, ऐसा व्यवहार नहीं होसक्ता है, क्योंकि जो पदार्थ जिस कालमें है, ऐसा कहा जायगा, उसी कालमें नहीं है, ऐसा कदापि नहीं कहाजाता है, फिर एकही पदार्थमें व्यक्त है, और अव्यक्त है, अर्थात् प्रगट है और प्रगट नहीं, ऐसा भी नहीं कहाजाता है, और जो तुमने आकाशके दो भेद माने हैं, सो भी नहीं बनता है, क्योंकि तुम आकाशको शून्य मानतेहो शून्यमें अर्थात् अवस्तुमें दो भेद कैसे होसक्ते है? और, आवरणसे रहित होकर

विज्ञानके सहित जीवका अलोकाकाशमें निवासका नाम मुक्ति भी नहीं बनसक्ता है, क्योंकि देहधारीका एक स्थानमें निवास होसक्ता है, देहसे रहितका कदापि नहीं होसक्ता है, और मोक्षावस्थामें देह इन्द्रियादिक रहते नहीं हैं, तब विना देहके जीवका निवास भी नहीं बनता है, इसलिये तुम्हारा मत सर्वथा युक्तियोंसे विरुद्ध होनेके कारण त्यागनेयोग्य है। जैनमतवालोंको पराजय करके फिर शङ्करजी वहाँसे नैमिषारण्यको चले आये।

उसदेशमें जाकर शङ्करजीने अपने बनाये हुए भाष्यादि ग्रन्थोंको फैलाया, और सब लोगोंको श्रुतिपथमें लगाया। वहाँसे फिर शङ्करजी कामरूदेशको चले गये, और वहाँपर भी वेदके मार्गका प्रचार किया। जिस कालमें शंकरजीने अभिनवयुक्तको जीता उसकालमें शङ्करजीके ऊपर अभिनवयुक्तको वडा क्रोध मनमें उत्पन्न हुआ उसी कालमें वह जाकर शंकरजीके मारनेके लिये मन्त्रका अनुष्ठान करनेलगा उसके अनुष्ठान करनेसे शङ्करजीको भगन्दर रोग उत्पन्न होगया, उस रोगकी निवृत्तिके लिये वहुतसे वैद्योंको बुलाकर चिकित्सा करानेलगे, जब बहुत दिनोंतक औषधियोंके सेवनसे भी वह रोग दूर न हुआ तब शङ्करजीने वैद्योंसे कहा तुम लोग जावो यह रोग शरीरका भोग है, विना भोग नहीं हटेगा, तब वैद्य सब चले गये, दो चार दिनके पीछे एकदिन अश्विनीकुमारोंने शङ्करजीसे आकरके कहा यह तुम्हारा रोग औषधीसे जानेका नहीं है, क्योंकि अभिनवयुक्तके अनुष्ठानसे यह उत्पन्न हुआ है, अश्विनीकुमारोंकी वार्ताको सुनकर पद्मपादाचार्य्यने गुप्तागुप्ती एक मन्त्रका अनुष्ठान किया उसके अनुष्ठानसे वह अभिनव मृत्युको प्राप्त होगया, और शङ्करजीका रोग भी जाता रहा।

फिर एक कालमें शङ्करजी गंगाके किनारे पर बैठे थे, और पद्मासन लगाकर अपने ध्यानमें स्थित थे, इतनेमें गौडपादाचार्य्यजी आते हुए सामनेसे दिखाई पडे। शङ्करजीने उठकर उनका सत्कार किया, अर्थात् हाथ जोडकर उनके सन्मुख खडे होगये। तब उन्होंने कहा आपके भाष्यको देखनेकी हमारी

इच्छा है शङ्करजीने अपने भाष्यको उनके प्रति दिखाया, देखकर वडे प्रसन्न हुए। फिर शङ्करजी वहाँसे कश्मीरदेशको गये, वहाँपर भी वेदविरोधी मतोंका ध्वंस करके अद्वैतमतका प्रचार किया। फिर शंकरजी वदरीवनको चले गये, वहाँपर कुछकालतक रह कर पश्चात् शंकरजीने इस अनित्य शरीरका त्याग करदिया ।

इति श्रीस्वामिदासशिष्यस्वामि परमानन्द विरचित
श्रीशङ्कराचार्य्य जीवनचरित्र समाप्त ।

॥ हरिः ॐ तत्सत ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष-मुंबई